ANT SHOWL SHOW THE SHOWL
र्भा आद्रम आद्रम आद्रम आद्रम आद्रम
अर अंद्रम अंद्रम अंद्रम अंद्रम अंद्रम
अग ओअम ओअम अधम ओअम ओअम
部 别都 别和 别都 别和
部 别知 新知 新知 新知 新知
अर अंद्रेस अंद्रेस अंद्रेस अंद्रेस अंद्रेस
अम अग्रम आग्रम आग्रम आग्रम आग्रम
3 273 T 373 T 373 T 3/12 T 3/12 T 3/12 T
वस अविम अविम अविम अविम अविम
उप अउम अउम अवस अवस आवस
उम २५३म २५३म २५३म और जायल
13 I 27 3 II 27 37 3/13 II 3/12 7/1000
2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2 2
127 2420 127 13727 13727
112 1 312 312 312 312 312 312 312 312 31
极水 别敌 别敌 为敌 海岛 别敌
码用 绿色红 新鱼红 别鱼红 别鱼红 新鱼红
极及 多级 多级 不多级 不多级 人
TON WISH AIRN AIRN AIRN

# अथ सन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधिः

यह पुस्तक नित्यकर्मविधि का है। इसमें पञ्चमहायज्ञ का विधान है, जिनके ये नाम हैं कि—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ भौर नृयज्ञ । उनके मन्त्र, मन्त्रों के ग्रथं ग्रीर जो-जो करने का विधान लिखा है, सो-सो यथावत् करना चाहिये। एकान्त देश में अपने ग्रात्मा, मन और शरीर को शुद्ध ग्रीर शान्त करके, उस-उस कमें में चित्त लगा के, तत्पर होना चाहिये। इन नित्यकर्मों के फल ये हैं कि— ज्ञानप्राप्ति से ग्रात्मा की उन्नति और ग्रारोग्यता होने से, शरीर के सुख से व्यवहार ग्रीर परमार्थ काय्यों की सिद्धि होना। उससे धर्म, ग्रथं, काम ग्रीर मोक्ष ये सिद्ध होते हैं। इनको प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है।

ग्रथ तेषां प्रकारः । तत्रादौ ब्रह्मयज्ञान्तर्गतसन्ध्याविधानं प्रोच्यते । तत्र सन्ध्याश्वाद्यार्थः—'सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या' । तत्र रात्रिन्दिवयोः सन्धिवेलायामुभयोस्सन्ध्ययोः सर्वेमंनुष्यैरवश्यं परमेश्वरस्यैव स्तृति-प्रार्थनोपासनाः कार्य्याः ।

ग्रादौ शरीरशुद्धिः कर्त्तव्या--

सा बाह्या जलादिना, म्राभ्यन्तरा रागद्वेषासत्यादित्यागेन ।

श्रत्र प्रमाणम्---

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिज्ञनिन शुध्यति ।।

इत्याह मनु:-अ० ५ । इलो० १०९ ॥

शरीरशुद्धेस्सकाशादात्मान्तःकरणशुद्धिरवश्यं ३ सर्वेस्सम्पादनीया । तस्यास्सर्वोत्कृष्टत्वात् परब्रह्मप्राप्त्येकसाधनत्वाच्च ।

## ततो मार्जनं कुर्यात्--

नैवेश्वरघ्यानादावालस्यं भवेदेतदर्थं शिरोनेत्राद्युपरि जलप्रक्षेपणं कर्त्तव्यम् । नो चेश्व ।

मावार्थ — ग्रब सन्ध्योपासनादि पाँच महायज्ञों की विधि लिखी जाती है। ग्रोर उसमें के मन्त्रों का अर्थ भी लिखा जाता है। पहिले 'सन्ध्या' शब्द का ग्रर्थ यह है कि — (सन्ध्यायन्ति०) भली भाँति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाय

१. बलि वैश्वदेव यज्ञ । सं०

२. प्रतिथियज्ञ। सं०

३. ''भ्रपेक्षया'' इत्यर्थः । सं०

### पञ्चमहायज्ञविधि:

परमेश्वर का जिसमें, वह 'सन्ब्या'। सो रात ग्रौर दिन के संयोग समय दोनों सन्ध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना ग्रौर उपासना करनी चाहिये।

पहिले बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धि और राग द्वेष आदि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी चाहिये। क्यों कि मनुजी ने अध्याय ५ के १०६ श्लोक (अद्भिगात्राणि इत्यादि) में यह लिखा है कि शरीर जल से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या और तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है। परन्तु शरीरशुद्धि की अपेक्षा अन्त:करण की शुद्धि सबको अवश्य करनी चाहिये। क्यों कि वही सर्वोत्तम और परमेश्वर प्राप्ति का एक साधन है।

तब कुशावा हाथ से मार्जन करे। अर्थात् परमेश्वर काध्यान ग्रादि करने के समय किसी प्रकार का ग्रालस्य न ग्रावे, इसलिये शिर और नेत्र ग्रादि पर जल प्रक्षेप करे। यदि ग्रालस्य न हो तो न करना।

# पुनर्न्यूनान्त्यूनांस्त्रीन् प्राणायामान् कुर्यात्--

आभ्यन्तरस्थं वायुं नासिकापुटाभ्यां बलेन बहिनिस्सार्य्यं यथाशक्ति बहिरेव स्तम्भयेत् । पुनः शनैदशनैर्गृहीत्वा किंचित् तमवरुध्य पुनस्तथैव बहिन्निस्सारयेदव-रोधयेच्च । एवं त्रिवारं न्यूनातिन्यूनं कुर्याद् । प्रनेनात्ममनसोः स्थिति सम्पादयेत् ।

# ततो गायत्रीमन्त्रेण शिखां बद्घ्वा रक्षाञ्च कुर्यात्--

इतस्ततः केशा न पतेयुरेतदर्थं शिखाबन्धनम् । प्रार्थितस्सन्नीश्वरस्सत्कर्मसु सर्वत्र सर्वदा रक्षेत्रः, एतदर्थं रक्षाकरणम् ।

मावार्थ — फिर कम से कम तीन प्राणायाम करे। अर्थात् भीतर के वायु को बल से निकाल कर यथाशक्ति बाहर ही रोक दे। फिर शनै: शनै: ग्रहण करके कुछ चिर भीतर ही रोक के बाहर निकाल दे, ग्रीर वहाँ भी कुछ रोके। इस प्रकार कम से कम तीन वार करे। इससे ग्रात्मा ग्रीर मन की स्थिति सम्पादन करे।

इसके ग्रनन्तर गायत्री मन्त्र से शिखा को बाँध के रक्षा करे। इसका प्रयोजन यह है कि इधर उधर केश न गिरें, सो यदि केशादि पतन न हो तो न करे ग्रीर रक्षा करने का प्रयोजन यह है कि परमेश्वर प्राधित होकर सब भले कामों में सदा सब जगह में हमारी रक्षा करे।

### ग्रथाचमन मन्वः--

ओं शको देवीर्मिष्टंय आपी भवन्तु पीतेंये। शंयोर्मि स्रवन्तु नः ॥ य० अ० ३६। मं० १२॥

भाष्यम् — 'ग्राप्लृ व्याप्तो' ग्रस्माद्धातोरप्शब्दः सिध्यति । ग्रप्शब्दो नियतस्त्रीलिङ्गो बहुवचनान्तश्च । 'दिवु कीडाद्यर्थः' । (शन्नो दे०) देव्य आपः सर्वप्रकाशकस्सर्वानन्द-

880

### सन्ध्योपासनम्

480

प्रदस्सर्वव्यापक ईश्वरः, (ग्रभिष्टये) इष्टानन्दप्राप्तये, (पीतये) पूर्णानन्दभोगेन तृष्तये, (नः) ग्रस्मभ्यं, (शम्) कल्याणं, (भवन्तु) ग्रर्थात् भावयतु प्रयच्छतु । ता आपो देव्यः स एवेश्वरः (नः) अस्मभ्यं, (शंयोः) शम् (ग्रभि स्रवन्तु) ग्रर्थात् सुखस्याभितः सर्वतो वृष्टि करोतु ।

ग्रप्शब्देनेश्वरस्य ग्रहणम् । अत्र प्रमाणम्— यत्रं <u>लोकांश्च कोञ्चांश्वापो ब्रह्म</u> जनौ विदुः । असंच्<u>च</u> यत्रु सच्<u>चा</u>न्तः स्कुम्भं तं ब्रूहि कतुमः स्विदेव सः ॥

ग्रय० कां० १०। सू० ७। मं० १०।।

ग्रनेन वेदमन्त्रप्रमाणेनाष्क्राब्देन परमात्मनोऽत्र ग्रहणं क्रियते ।।

एवमनेन मन्त्रेणेश्वरं प्रा**र्थंयित्वा** त्रिराचामेत्। जलाभावश्चेन्नैव कुर्यात्। आचमनमप्यालस्य कण्ठस्थकफस्य निवारणार्थम्।

भाषार्थ—ग्रब ग्राचमन करने का मन्त्र लिखते हैं—(ग्रों शन्नोदेवी इत्यादि)। इसका अर्थ वह है कि—'आप्लू व्याप्तों' इस धातु से ग्रप् शब्द सिद्ध होता है। वह सदा स्त्रीलिङ्ग ग्रीर बहुवचनान्त है। 'दिवुं' धातु अर्थात् जिसके कीड़ा ग्रादि अर्थ हैं, उससे देवी शब्द सिद्ध होता है। (देव्यः ग्रापः) सबका प्रकाशक, सबको ग्रानन्द देने वाला ग्रीर सर्वव्यापक ईश्वर, (ग्रिभिष्टये) मनोवाञ्छित ग्रानन्द के लिये, और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये, (नः) हमको (शम्) कल्याणकारी (भवन्तु) हो, अर्थात् हमारा कल्याण करे। वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (ग्रिभिन्नवन्तु) सर्वथा वृष्टि करे।

यहाँ 'ग्रप्' शब्द से ईश्वर के ग्रहण करने में प्रमाण—(यत्र लोकांश्च०) जिसमें सब लोक लोकान्तर, कोश अर्थात् सब जगत् का कारणरूप खजाना, जिसमें ग्रसत् ग्रहश्यरूप ग्राकाशादि ग्रीर सत् स्थूल प्रकृत्यादि सब पदार्थ स्थित हैं, उसी का नाम अप् है। ग्रीर वह नाम ब्रह्म का है, तथा उसी को स्कम्भ कहते हैं। वह कौनसा देव ग्रीर कहाँ है? इसका यह उत्तर है कि जो (ग्रन्तः) सबके भीतर व्यापक होके परिपूर्ण हो रहा है, उसी को तुम उपास्य, पूज्य ग्रीर इष्टदेव जानो। इस वेदमन्त्र के प्रमाण से अप नाम ब्रह्म का है।

इस प्रकार इस मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके तीन आ चमन करे, यदि जल न हो तो न करे। ग्राचमन से गले के कफादि की निवृत्ति होना प्रयोजन है।

ग्रों वाक् वाक् । ग्रों प्राणः प्राणः । ग्रों चक्षुः चक्षुः । ग्रों श्रोत्रम् श्रोत्रम् । ग्रों नाभिः । ग्रों हृदयम् । ग्रों कण्ठः । ग्रों शिरः । ग्रों बाहुभ्यां यशोबलम् । ग्रों करतलकरपृष्ठे ॥

ग्रथेन्द्रियस्पर्शः--

380

### पञ्चमहायज्ञविधिः

माध्यम्—एभि: सर्वत्रेश्वरप्रार्थनया स्पर्शः कार्यः । सर्वदेश्वरकृपयेन्द्रियाणि बल-वन्ति तिष्ठन्दिवस्यभिप्रायः ॥

ग्रथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमन्त्राः--

ग्रों भूः पुनातु शिरसि । ग्रों भुवः पुनातु नेत्रयोः । ग्रों स्वः पुनातु कण्ठे। ग्रों महः पुनातु हृदये। ग्रों जनः पुनातु नाभ्याम्। ग्रों तपः पुनातु पादयोः । ग्रों सत्यं पुनातु पुनिश्शिरित । ग्रों खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

भाष्यम्-- ओमित्यस्य, भूर्भुंवः स्वरित्येतासां चार्वा गायत्रीमन्त्रार्थे द्रष्टव्याः । महरथात् सर्वेभ्यो महान्, सर्वैः पूज्यक्च । सर्वेषां जनकत्वाज्जनः परमेश्वरः । दुष्टानां संतापकारकत्वात् स्वयं ज्ञानस्वरूपत्वात्, 'यस्य ज्ञानमयं तपः' इति वचनस्य प्रामाण्यात् तप ईश्वरः । यदिवनाशि यस्य कदाचिद् विनाशो न भवेत् तत्सत्यम् । 'ब्रह्म व्यापकमिति बोध्यम् ।।

इतीश्वरनामभिमार्जनं कृर्यात्।

#### ग्रथ प्राणायाममन्त्राः---

ग्रों मू:। ग्रों भुव: । ग्रों स्व:। ग्रों महः। ग्रों जन:। ग्रों तपः। ओं सत्यम् ॥ तैत्ति । प्रपा । १०। प्रनु ० ७१ ॥

भाष्यम् - एतेषामुच्चारणार्थविचारपुरस्सरं पूर्वोक्तप्रकारेण प्राणायामान् क्यति ॥

प्रार्थनापूर्वक इन्द्रियों का स्पर्श करे। इसका ग्रिभिप्राय यह है कि ईश्वर की प्रार्थना से सब इन्द्रिय बलवान् रहें।

ग्रव ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक मार्जन के मन्त्र लिखे जाते हैं—(ओं भू: पुनातु शिरसीत्यादि)। ग्रोंकार, भूः, भुवः और स्वः इनके ग्रर्थं गायत्री मन्त्र के ग्रर्थं में देख लेना। (महः) सब से बड़ा श्रीर सबका पूज्य होने से परमेश्वर को मह कहते हैं। (जनः) सब जगत् के उत्पादक होने से परमेश्वर का जन नाम है। (तपः) दुष्टों को सन्तापकारी और ज्ञानस्वरूप होने से ईश्वर को तप कहते हैं, क्योंकि 'यस्येत्यादि' उपनिषद् का वाक्य इसमें प्रमाण है। (सत्यम्) अविनाशी होने से परमेश्वर का सत्य नाम है। ग्रीर व्यापक होने से ब्रह्म नाम परमेश्वर का है। अर्थात पूर्व मन्त्रोक्त सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

इस प्रकार ईश्वर के नामों के ग्रथों का स्मरण करते हुए मार्जन करें।

अब प्राणायाम के मन्त्र लिखते हैं--(ग्रों भूरित्यादि)। इनके उच्चारण श्रीर अर्थं विचारपूर्वंक पूर्वोक्त प्रकार के अनुसार प्राणायामों को करे।

१. मुण्डको०१।१।९।।

२. खम्। सं०

१. मानसिकोच्चारणमित्यर्थः । सं० ४. मानसिक उच्चारण । सं०

## सन्ध्योपासनम्

680

## ग्रथाघमर्षणमन्त्राः--

अथेश्वरस्य जगदुत्पादनद्वारा स्तुत्याऽघमर्षणमन्त्रा अर्थात् पापदूरीकरणार्थाः-

ओर्स् ऋतञ्चं स्त्यञ्चामीद्धात् तप्सोऽध्यंजायत ।
ततो राज्यंजायत् ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥
समुद्रादंर्श्ववादाधं संवत्सरो अंजायत ।
अहोरात्राणि विद्धद् विश्वस्य मिष्तो वृशी ॥२॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमंकल्पयत् ।
दिवंञ्च पृथिवीञ्चान्तारक्षमथो स्वः ॥३॥

ऋ० अ० ६ । अ० ६ । व० ४६ । मं० १-३ ।।
भाष्यम्—(धाता) दधाति सकलं जगत् पोषयित वा स धातेश्वरः, (वशी) वशं
कतुँ शीलमस्य सः, (यथापूर्वम्) यथा तस्य सर्वज्ञे विज्ञाने जगद्रचनज्ञानमासीत्, पूर्वकल्पसृष्टौ यथा रचनं कृतमासीत्तथैव जीवानां पुण्यपापानुसारतः प्राणिदेहानकल्पयत् ।
(सूर्याचन्द्रमसौ) यौ प्रत्यक्षविषयौ सूर्यचन्द्रलोकौ (दिवम्) सर्वोत्तमं स्वप्रकाशमग्न्यास्यम् (पृथिवीं) प्रत्यक्षविषयां प्रन्तिरक्षम्) अर्थाद् द्वयोर्लोकयोर्मध्यमाकाशं तत्रस्थांलोकांश्च (स्वः) मध्यस्थं लोकम् (अकल्पयत्) यथापूर्वं रचितवान् । ईश्वरज्ञानस्यापरिणामित्वात्, पूर्णत्वादनन्तत्वात्, सर्वदैकरसत्वाच्च नैव तस्य वृद्धिक्षयव्यभिचाराश्च
कदाचिद् भवन्ति । अत एव 'यथापूर्वमकल्पयद्' इत्युक्तम् ।

स एव वशीश्वरः (विश्वस्य मिषतः) सहजस्वभावेन (ग्रहोरात्राणि) रात्रे-दिवसस्य च विभागं यथापूर्वं (विद्यत्) विधानं कृतवान् । तस्य धातुवंशिनः परमेश्वर-स्यैव (अभीद्धात्) अभितः सर्वतः इद्धात् दीप्तात् ज्ञानमयात् (तपसः) ग्रथदिनन्त-सामर्थ्यात् (ऋतम्) यथार्थं सर्वविद्याधिकरणं वेदशास्त्रं, (सत्यम्) त्रिगुणमयं प्रकृत्यात्म-कमव्यक्तं, स्थूलस्य सूक्ष्मस्य जगतः कारणं च (अव्यजायत) यथापूर्वमृत्पन्नम् ।

(ततो रात्री) या तस्मादेव सामर्थ्यात् प्रलयानन्तरं भवति सा रात्रिः, (अजायत) यथापूर्वमुत्पन्नासीत् । "तमं आसीत्तमंसा गृद्धमं ऋ० थ्र० ८ । अ० ७ । व० १७ । मं० ३ ॥" अग्रे सृष्टेः प्राक् तमोऽन्धकार एवासीत् तेन तमसा सकलं जगदिदमुत्पत्तेः प्राग् गृढं गुप्तमर्थाददृश्यमासीत् ।

(ततः समु०) तस्मादेव सामर्थ्यात् पृथिवीस्थोऽन्तरिक्षस्थश्च महान् समुद्रः-अजायत, यथापूर्वमुत्पन्न ग्रासीत् । (समुद्रायणवात्) पश्चात् (संवत्सरः) क्षणादिलक्षणः कालोऽध्यजायत । यावज्जगत् तावत् सर्वं परमेश्वरस्य सामर्थ्यादेवोत्पन्नमित्यव-धार्य्यम् ।। १-३ ।।

१. भूमिम्। सं०

985

### पञ्चमहायज्ञविधि:

एवमुक्तगुणं परमेश्वरं संस्मृत्य पापाःद्भीत्वा ततो दूरे सर्वेर्जनैः स्थातव्यम् । नैव कदाचित् केनचित् स्वल्पमपि पापं कर्त्तव्यमितीश्वराज्ञास्तीति निश्चेतव्यम् । ग्रनेना-घमर्षणं कुर्य्यादर्थात्पापानुष्ठानं सर्वथा परित्यजेत् ।

भाषार्थ — ग्रब ग्रघमर्षण-ग्रर्थात् हे ईश्वर ! तू जगदुत्पादक है, इत्यादि स्तुति करके पाप से दूर रहने के उपदेश के मन्त्र लिखते हैं — (ओं ऋतञ्च सत्यमित्यादि)। इनका ग्रथं यह है कि —

(धाता) सब जगत् का धारण और पोषण करने वाला और (वशी) सब को वश करने वाला परमेश्वर, (यथापूर्वम्) जैसा कि उस के सर्वज्ञ विज्ञान में जगत् के रचने का ज्ञान था, और जिस प्रकार पूर्वकल्प की सृष्टि में जगत् की रचना थी, और जैसे जीवों के पुण्य पाप थे, उनके प्रनुसार ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों के देह बनाये हैं। (सूर्याचन्द्रमसी) जैसे पूर्व कल्प में सूर्य चन्द्र लोक रचे थे, वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं (दिवम्) जैसा पूर्व सृष्टि में सूर्यादि लोकों का प्रकाश रचा था, वैसा ही इस कल्प में भी रचा है। तथा (पृथिवीम्) जैसी प्रत्यक्ष दीखती है, (अन्तिरक्षम्) जैसा पृथिवी और सूर्यलोक के बीच में पोलापन है, (स्वः) जितने आकाश के बीच में लोक हैं, उनको (अकल्पयत्) ईश्वर ने रचा है। जैसे अनादिकाल से लोक लोकान्तर को जगदीश्वर बनाया करता है, वैसे ही अब भी बनाये हैं और आगे भी बनावेगा, क्योंकि ईश्वर का ज्ञान विपरीत कभी नहीं होता किन्तु पूर्ण और अनन्त होने से सर्वदा एकरस ही रहता है, उस में वृद्धि, क्षय और उलटापन कभी नहीं होता। इसी कारण से 'यथा-पूर्वमकल्पयत्' इस पद का ग्रहण किया है।

(विश्वस्य मिषतः) उसी ईश्वर ने सहजस्वभाव से जगत् के रात्रि, दिवस, घटिका; पल और क्षण ग्रादि को जैसे पूर्व थे वैसे ही (विद्यत्) रचे हैं। इसमें कोई ऐसी शंका करे कि ईश्वर ने किस वस्तु से जगत् को रचा है? उसका उत्तर यह है कि (ग्रभोद्धात् तपसः) ईश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से सब जगत् को रचा है। जो कि ईश्वर के प्रकाश से जगत् का कारण प्रकाशित ग्रौर सब जगत् के बनाने की सामग्री ईश्वर के ग्राधीन है। (ऋतम्) उसी ग्रनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से सब विद्या का खजाना वेदशास्त्र को प्रकाशित किया, जैसा कि पूर्व सृष्टि में प्रकाशित था। ग्रौर ग्रामे के कल्पों में भी इसी प्रकार से वेदों का प्रकाश करेगा। (सत्यम्) जो त्रिगुणात्मक ग्रर्थात् सत्व, रज और तमोगुण से युक्त है, जिसके नाम ग्रव्यक्त, अव्याकृत, सत्, प्रधान प्रकृति हैं, जो स्थूल ग्रौर सूक्ष्म जगत् का कारण है, सो भी (अध्यजायत) ग्रिगृत्ति हैं, जो स्थूल ग्रौर सूक्ष्म जगत् का कारण है, सो भी (अध्यजायत) ग्रायीत् कार्यरूप होके पूर्व कल्प के समान उत्पन्न हुग्ना है। (ततो रात्यजायत) उसी ईश्वर के सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे हजार चतुर्युगी के प्रमाण से रात्रि कहाती है, सो भी पूर्व प्रलय के तुल्य ही होती है। इसमें ऋष्वेद का प्रमाण है कि—"जब जब विद्यमान सृष्टि होती है, उसके पूर्व सब ग्राकाश ग्रन्धकाररूप रहता है, और उसी विद्यमान सृष्टि होती है, उसके पूर्व सब ग्राकाश ग्रन्धकाररूप रहता है, और उसी ग्रन्धकार में सब जगत् के पदार्थ ग्रीर सब जीव ढके हुए रहते हैं, उसी का नाम महा-

१. भूमि जो।सं०

रात्रि है।" (ततः समुद्रो ग्रणंवः) तदनन्तर उसी सामर्थ्य से पृथिवी और मेघ मण्डल में जो महासमुद्र है, सो पूर्व सृष्टि के सदृश ही उत्पन्न हुग्रा है।

(समुदावणंवादिध संवत्सरो मजायत) उसी समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर प्रथीत् क्षण, मुहूत्तं, प्रहर मादि काल भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुम्रा है। वेद से लेके पृथिवी पर्यन्त जो यह जगत् है, सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुम्रा है। ग्रीर ईश्वर सबको उत्पन्न करके, सब में व्यापक होके ग्रन्तर्यामी रूप से सबके पाप पुण्यों को देखता हुम्रा पक्षपात छोड़ के सत्य न्याय से सबको यथावत फल दे रहा है।। १-३।।

ऐसा निश्चत जान के ईश्वर से भय करके सब मनुष्यों को उचित है कि मन, कर्म ग्रीर वचन से पापकर्मों को कभी न करें। इसी का नाम ग्रघमर्षण है, अर्थात् ईश्वर सबके अन्तकरण के कर्मों को देख रहा है इससे पापकर्मों का ग्राचरण मनुष्य लोग सर्वथा छोड देवें।

'शक्नो देवी' रिति पुनराचामेत् । ततो गायत्र्यादिमन्त्रार्थान् मनसा विचारयेत्। पुनः परमेश्वरेणैव सूर्यादिकं सकलं जगद्रचितमिति परमार्थस्वरूपं ब्रह्म चिन्तियत्वा परं ब्रह्म प्रार्थयेत् ।

भाषार्थ—'शन्नो देवीरिति' इस मन्त्र से [पुनः] तीन आचमन करे। तदनन्तर गायत्र्यादि मन्त्रों के प्रयं विचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति, अर्थात् परमेश्वर के गुण श्रीर उपकार का ब्यान कर, पश्चात् प्रार्थना करे। अर्थात् सब उत्तम कामों में ईश्वर का सहाय चाहे, श्रीर सदा पश्चात्ताप करें कि मनुष्यशरीर धारण करके हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ भी नहीं बनता। जैसा कि ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति करके सब जगत् का उपकार किया है, वैसे हम लोग भी सब का उपकार करें। इस काम में परमेश्वर हमको सहाय करे कि जिससे हम लोग सबको सदा सख देते रहें।

तदनन्तर ईश्वर की उपासना करे, सो दो प्रकार की है—एक संगुण और दूसरी निर्गुण। जैसे ईश्वर सर्वशिक्तमान्, दयालु, न्यायकारी. चेतन, व्यापक, अन्तर्यामी, सब का उत्पादक, धारण करनेहारा, मङ्गलमय, शुद्ध, सनातन, ज्ञान ग्रीर ग्रानन्दस्वरूप है। धर्म, अर्थ, काम ग्रीर मोक्ष पदार्थों का देनेवाला, सब का पिता, माता, बन्धु, मित्र, राजा ग्रीर न्यायाधीश है। इत्यादि ईश्वर के गुण विचारपूर्वक उपासना करने का नाम सगुणोपासना है।

तथा निगुंणोपासना इस प्रकार से करनी चाहिये कि ईश्वर ग्रनादि, ग्रनन्त है, जिसका ग्रादि ग्रोर अन्त नहीं। अजन्मा, ग्रमृत्यु, जिसका जन्म ग्रीर मरण नहीं। निराकार, निविकार जिसका आकार ग्रीर जिसमें कोई विकार नहीं। जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, ग्रन्याय, अधर्म, रोग, दोष, ग्रज्ञान ग्रीर मलीनता नहीं है। जिसका परिमाण, छेदन, बन्धन, इन्द्रियों से दर्शन, ग्रहण ग्रीर कम्पन नहीं होता। जो

१. ग्रन्तरिक्ष में । सं०।

### पञ्चमहायज्ञविधिः

ह्रस्व, दीर्घ और शोकातुर कभी नहीं होता । जिसको भूख, प्यास, शीतोष्ण, हर्ष भीर शोक कभी नहीं होते । जो उलटा काम कभी नहीं करता, इत्यादि जो जगत् के गुणों से ईश्वर को ग्रलग जान के ध्यान करना, वह निर्णुणोपासना कहाती है ।

इस प्रकार प्राणायाम करके, अर्थात् भीतर के वायु को बल से नासिका के द्वारा बाहर फेंक के, यथाशक्ति बाहर ही रोक के पुन: धीरे-धीरे भीतर लेके, पुन: बल से बाहर फेंक के रोकने से मन और आत्मा को स्थिर करके, आ्रात्मा के बीच में जो अन्तर्यामीरूप से ज्ञान और आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर है, उसमें अपने आप को मग्न करके, अत्यन्त आनन्दित होना चाहिये। जैसा गोताखोर जल में डुबकी मारके शुद्ध होके बाहर आता है, वैसे ही सब जीव लोग अपने आत्माओं को शुद्ध ज्ञान आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके नित्य शुद्ध करें।

## श्रथ मनसा परिक्रमा-मन्त्राः—

ओं प्राची दिगाग्निराधिपतिरसितो रक्षितादित्या इर्षवः । तेम्यो नमोऽधि-पतिभ्यो नमी रक्षित्म्यो नम् इषुभ्यो नमं एभ्यो अस्त । योर्बस्मान् देष्टि यं व्यं द्विष्मस्तं वो जम्भे दष्मः ॥१॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपातिस्तिरंश्विराजी रश्चिता पितर् इर्षवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमी रश्चित्रभ्यो नम् इर्षुभ्यो नमे एभ्यो अस्तु । योश्वेस्मान् द्वेष्टि यं वृयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दक्ष्मः ॥२॥

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदीक् रश्चितान्नुमिर्ववः । तेभ्यो नमोऽधि-पतिभ्यो नमी रश्चित्भ्यो नम् इष्टंभ्यो नम् एभ्यो अस्तु । योर्ड्स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दष्मः ॥३॥

उदी ची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रिधताशिनिरिषवः । तेम्यो नमोऽधि-पतिभयो नमी रिधित्मयो नम् इष्ट्रम्यो नमं एभ्यो अस्तु । योईस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दष्मः ॥४॥

ध्रुवा दिग्विष्णुराधिपतिः कल्पाषंग्रीवो रक्षिता वीरुध इर्षवः । तेम्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमी रक्षित्भयो नम् इर्षभ्यो नमं एभ्यो अस्तु । योर्बस्मान् द्वेष्टि यं वृयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥५॥

040

१. यहां यह तीन संख्या प्लुत की द्योतक नहीं। ग्रतः 'ग्रों' को प्लुत स्वर से ग्रथीत् ग्रिधिक लम्बा करके नहीं बोलना चाहिये। ऐसे ही ग्रगले पाँच मन्त्रों में भी। सं०।

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पित्रिधिपतिः श्चित्रो रश्चिता वर्षमिष्यः । तेम्यो नमोऽ-धिपितिभ्यो नमी रश्चित्रभ्यो नम् इष्टम्यो नमं एभ्यो अस्तु । योईस्मान् द्वेष्टि यं वृयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दष्मः ॥६॥ प्रथवं कां०३। अ०६। स्०२७। मं०१-६।

भाष्यम्—(प्राची दि०) सर्वासु दिक्षु व्यापकमी इवरं संध्यायामग्न्य। दिभिनीमिभिः प्रार्थयेत् । यत्र स्वस्य मुखं सा प्राची दिक् तथा यस्यां सूर्य उदेति सापि प्राची दिगस्ति । तस्या अधिपतिरग्निरर्थात् ज्ञानस्वरूपः परमेश्वरः, (असितः) वन्धनरिहतो- उस्माकं सदा रक्षिता भवतु । यस्यादित्याः प्राणाः किरणाश्चेषवो, यैः सर्वं जगद् रक्षति, तेभ्य इन्द्रियाधिपतिभ्यश्गरीररक्षितृभ्य इषुरूपेभ्यः प्राणेभ्यो वारंवारं नमोऽतु । कस्मै प्रयोजनाय ? यः कश्चिदस्मान् द्वेष्टियं च वयं द्विष्मस्तं (वः) तेषां प्राणानां (जम्भे) अर्थाद्वशे दिष्मः । यतस्सोऽनर्थान्निवर्यं स्विमत्रं भवेत् । वयं च तस्य मित्राणि भवेम ।। १।।

(दक्षिणा०) दक्षिणस्या दिश इन्द्रः परमैश्वर्य्ययुक्तः परमेश्वरोऽधिपतिरस्ति, स एव कृपयाऽस्माकं रक्षिता भवतु । ग्रग्ने पूर्ववदन्वयः कर्त्तव्यः ।। २ ।।

तथा (प्रतीची दिग्०) अस्या वरुणः सर्वोत्तमोऽधिपतिः परमेश्वरोऽस्माकं रक्षिता भवेदिति पूर्ववत् ॥ ३ ॥

(उदीची०) सोमः सर्वजगदुत्पादकोऽधिपतिरीश्वरोऽस्माकं रक्षिता स्यादिति ।।४।।

(ध्रुवा दिक्) म्रर्थादधो दिक्, म्रस्या विष्णुव्यापक ईश्वरोऽधिपतिः, सोऽस्या-मस्मान् रक्षेत् । ग्रन्यत् पूर्ववत् ।। ५ ।।

(ऊर्ध्वा दिक्०) ग्रस्या वृहस्पतिरर्थाद् बृहत्या वाचो, बृहतो वेदशास्त्रस्य, बृहतामाकाशादीनां च पतिर्बृहस्पतिर्यः सर्वजगतोऽधिपतिः सर्वतोऽस्मान् रक्षेत् । अग्रे पूर्ववद्योजनीयम् । सर्वे मनुष्याः सर्वशक्तिमन्तं सर्वगुरुं न्यायकारिणं दयालुं पितृवत्पालकं सर्वासु दिक्षु सर्वत्र रक्षकं परमेश्वरमेव मन्येरिन्नत्यिभिष्रायः ।। ६ ।।

भाषार्थ — (प्राची दिगिग्नरिधपितः) जो प्राची दिक् अर्थात् जिस ग्रोर ग्रपना
मुख हो [तथा जिस ओर सूर्यं उदय हो,] उस ग्रोर अग्नि जो ज्ञानस्वरूप ग्रिधपिति, जो
सव जगत् का स्वामी, (ग्रिसितः) बन्धनरिहत, (रिक्षिता) सव प्रकार से रक्षा करने
वाला, (आदित्या इषवः) जिसके बाण ग्रादित्य की किरण हैं। उन सब गुणों के
ग्रिधपित ईश्वर के गुणों को हम लोग बारम्बार नमस्कार करते हैं। (रिक्षतृभ्यो नम
इपुभ्यो नम एभ्यो ग्रस्तु) जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थं जगत् की रक्षा
करनेवाले हैं, और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देनेवाले हैं, उनको हमारा
नमस्कार हो। इसलिए कि जो प्राणी ग्रजान से हमारा द्वेष करता है, श्रीर जिस
ग्रजान से धार्मिक पुरुष का तथा पापी पुरुष का हम लोग द्वेष करते हैं, उन सब की
बुराई को उन बाणरूप किरण, मुखरूप के बीच में दग्ध कर देते हैं कि जिससे किसी

### पञ्चमहायज्ञविधिः

से हम लोग वैर न करें, और कोई भी प्राणी हम से वैर न करे, किन्तु हम सब लोग परस्पर मित्रभाव से वर्तें।। १।।

(दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपितः) जो हमारे दाहिनी ग्रोर दक्षिण दिशा है, उसका अधिपित इन्द्र ग्रथीत् जो पूर्ण ऐश्वर्यवाला है। (तिरिश्चराजी रिक्षता) जो जीव कीट पतञ्ज वृश्चिक ग्रादि तिर्य्यक् कहाते हैं, उनकी राजी जो पंक्ति है, उनसे रक्षा करने-वाला एक परमेश्वर है। (पितर इषवः) जिसकी सृष्टि में ज्ञानी लोग बाण के समान हैं। (तैभ्यो नमो०) आगे का अर्थ पूर्व के समान जान लेना।। २।।

(प्रतीची दिग् वहणोऽधिपतिः) जो पिश्चम दिशा ग्रर्थात् ग्रपने पृष्ठ भाग में है, उसमें वहण जो सब से उत्तम सब का राजा परमेश्वर है, (पृदाकू रक्षिताझमिषवः) जो बड़े-बड़े ग्रजगर सर्पादि विषधारी प्राणियों से रक्षा करनेवाला है। जिसके ग्रन्न अर्थात् पृथिव्यादि पदार्थं बाणों के समान हैं, श्रेष्ठों की रक्षा ग्रीर दुष्टों की ताड़ना के निमित्त हैं। (तेभ्यो नमो०) इसका ग्रर्थ पूर्व मन्त्र के समान जान लेना ।। ३।।

(उदीची दिक् सोमोऽधिपितः) जो अपनी बांई स्रोर उत्तर दिशा है, उसमें सोम नाम से अर्थात् शान्त्यादि गुणों से ग्रानन्द करनेवाले जगदीश्वर का ध्यान करना चाहिये। (स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः) जो श्रच्छी प्रकार ग्रजन्मा ग्रौर रक्षा करनेवाला है। जिसके बाण विद्युत् हैं। (तेभ्यो नमो०) ग्रागे पूर्ववत् जान लेना।। ४।।

(ध्रुवा दिग्विष्णुरिधपितः) ध्रुव दिशा ग्रर्थात् जो ग्रपने नीचे की ग्रोर है, उसमें विष्णु ग्रर्थात् व्यापक नाम से परमात्मा का ध्यान करना। (कल्माषग्रीवो रक्षित वीरुध इषवः) जिसके हरित रङ्गवाले वृक्षादि ग्रीवा के समान हैं। जिसके बाण के समान सब वृक्ष हैं, उनसे ग्रधोदिशा में हमारी रक्षा करे। (तेभ्यो नमो०) ग्रागे पूर्ववतु जान लेना।। १।।

(उर्द्ध् वा दिग्बृहस्पितरिधपितः) जो ग्रपने ऊपर दिशा है, उनमें बृहस्पित जो कि वाणी का स्वामी परमेश्वर है, उसको अपना रक्षक जानें। जिसके बाण के समान वर्षा के विन्दु हैं, उनसे हमारी रक्षा करे। (तैभ्यो०) ग्रागे पूर्ववत् जान लेना।।६।।

### ग्रथोपस्थानमन्त्राः---

# ओम् उद् वयं तमसस्पिर् स्वः पत्र्यन्तु उत्तरम् । देवं देवत्रा सर्य्यमगन्म ज्योतिरु<u>त्त</u>मम् ॥१॥

य० घ० ३५ । मं० १४ ।।

भाष्यम्—हे परमात्मन् ! (सूर्यम्) चराचरात्मानं त्वां, (पश्यन्तः) प्रेक्षमाणा-रगन्तो वयम्, (उदगन्म) स्रर्थात् उत्कृष्टश्रद्धावन्तो भूत्वा वयं भवन्तं प्राप्नुयाम । कथंभूतं त्वां ? (ज्योतिः) स्वप्रकाशम् (उत्तमम्) सर्वोत्कृष्टम्, (देवत्रा) सर्वेषु दिव्य-गुणवत्सु पदार्थेषु ह्यनन्तदिव्यगुणेर्युक्तं, (देवम्) धर्मात्मनां मुमुक्षूणां युक्तानां च

947

### सन्ध्योपासनम्

७५३

सर्वानन्दस्य दातारं मोदयितारं च, (उत्तरम्) जगत्प्रलयानन्तरं नित्यस्वरूपत्वाद् विराजमानं, (स्वः) सर्वानन्दस्वरूपं (तमसस्परि) अज्ञानान्धकारात् पृथग्भूतं भवन्तं प्राप्तुंवयं नित्यं प्रार्थयामहे । भवान् स्वकृपया सद्यः प्राप्नोतु न इति ।। १ ।।

भाषार्थ — ग्रब उपस्थान के मन्त्रों का ग्रर्थ करते हैं जिनसे परमेश्वर की स्तुति ग्रौर प्रार्थना की जाती है —

हे परमेश्वर ! (तमसस्परि स्वः) सब अन्धकार से अलग प्रकाशस्वरूप, (उत्तरम्) प्रलय के पीछे सदा वर्त्तमान (देवं देवत्रा) देवों में भी देव अर्थात् प्रकाश करनेवालों में प्रकाशक, (सूर्यम्) चराचर के आत्मा (ज्योतिरुत्तमम्) ज्ञानस्वरूप और सबसे उत्तम आप को जान के (वयम् उदगन्म) हम लोग सत्य प्राप्त हुए हैं। हमारी रक्षा करनी आपके हाथ है, क्योंकि हम लोग आपके शरण हैं।। १।।

# उदु त्यं <u>जा</u>तवेदसं देवं वेहन्ति केतवेः। दृशे विश्वीय सर्येम्॥२॥ यजुब्यव्हरामं०३१॥

भाष्यम् — (केतवः) किरणा विविधजगतः पृथक् पृथग्रचनादिनियामका ज्ञापकाः प्रकाशका ईश्वरस्य गुणाः, (दृशे विश्वाय) विश्वं द्रष्टुं (त्यम्) तं पूर्वोक्तं (देवं सूर्यम्) चराचरात्मानं परमेश्वरम् (उद्वहन्ति) उत्कृष्टतया प्रापयन्ति ज्ञापयन्ति प्रकाशयन्ति वै । (उ) इति वितर्के, नैव पृथक् पृथक् विविधनियमान् दृष्ट्वा नास्तिका ग्रपीश्वरं त्यक्तं समर्था भवन्तीत्यभिप्रायः । कथं भूतं देवम् ? (जातवेदसम्) जाता ऋग्वेदादयश्चत्वारो वेदा सर्वज्ञानप्रदा यस्मात्, तथा जातानि प्रकृत्यादीनि भूतान्यसंख्यातानि विन्दति, यद्वा जातं सकलं जगद्वेति जानाति यः स जातवेदाः, तं जातवेदसं सर्वे मनुष्यास्तमेवैकं प्राप्तुमुपासितुमिच्छन्त्वत्यभिप्रायः ।।

माषार्थं—(उदु त्यं०)। (जातवेदसं) जिससे ऋग्वेदादि चार वेद प्रसिद्ध हुए हैं, श्रीर जो प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त हो रहा है, जो सब जगत् का उत्पादक है, सो परमेश्वर जातवेदा नाम से प्रसिद्ध है। (देवम्) जो सब देवों का देव, श्रीर (सूर्यम्) सब जीवादि जगत् का प्रकाशक है (त्वम्) उस परमात्मा को (दृशे विश्वाय) विश्व-विद्या की प्राप्ति के लिये हम लोग उपासना करते हैं। (उद्वहन्ति केतवः) 'केतवः' श्रयात् वेद की श्रुति श्रीर जगत् के पृथक् पृथक् रचनादि नियामक गुण उसी परमेश्वर को जनाते श्रीर प्राप्त कराते हैं। उस विश्व के श्रात्मा श्रन्तर्यामी परमेश्वर ही की हम उपासना सदा करें, अन्य किसी की नहीं।। २।।

चित्रं देवनामुद्दगादनीकं चक्कुर्मित्रस्य वृह्णस्याग्नेः । आ<u>त्रा</u> द्यावापृथ्विवी अन्तरिक्षश्चर्ये आत्मा अर्गतस्त्रस्थुर्वश्च स्वाहां ॥३॥ य० घ० ७ । म० ४२ ॥ पञ्चमहायज्ञविधिः

820

भाष्यम्—स एव देव: सूर्यः (जगतः) जङ्गमस्य (तस्युषः) स्थावरस्य च (म्रात्मा) अतित नैरन्तर्य्येण सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा। तथा (म्राप्रा०) द्योः पृथिवी म्रन्ति सर्वं जगद् रचियत्वा म्रासमन्ताद् धारयन् सन् रक्षति। (चक्षुः) एष एवतेषां प्रकाशकत्वाद् बाह्याभ्यन्तरयोश्चक्षुः प्रकाशको विज्ञानमयो विज्ञापक-श्चास्ति। म्रत एव (मित्रस्य) सर्वेषु द्रोहरितस्य सूर्य्यंनोकस्य प्राणस्य वा, (वरुणस्य) वरेषु श्रेष्ठेषु कर्ममु गुणेषु वर्त्तमानस्य च, (ग्रग्नेः) शिल्पविद्याहेतो रूपगुणदाहप्रकाशकस्य विद्यतो भाजमानस्यापि चक्षुः सर्वसत्योपदेष्टा प्रकाशकश्च। (देवानाम्) स दिव्यगुणवतां विदुषामेव हृदये (उदगात्) उत्कृष्टतया प्राप्तोऽस्ति प्रकाशको वा। तदेव ब्रह्म (चित्रम्) म्रद्भुतस्वरूपम्। म्रत्र प्रमाणम्—"आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।। कठोपनि० वल्ली २।।" म्राश्चर्यस्वरूपत्वाद् ब्रह्मणः। तदेव ब्रह्म सर्वेषां चास्माकं (म्रनीकम्) सर्वदुःखनाशार्थं कामकोधादिशत्रु-विनाशार्थं बलमस्ति। तद्विहाय मनुष्याणां सर्वसुखकरं शरणमन्यन्नात्स्येवेति वेद्यम्।

(स्वाहा) ग्रयात्र स्वाहाशस्वार्थ प्रमाणम् निरुक्तकारा ग्राहुः— "स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येतत्सु ग्राहेति वा स्वा वागाहेति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हिवर्जु होतीति वा तासामेषा भवित ।। निरु अ० ६ । खं० २० ।।" स्वाहाशब्दस्यायमयः— (सु आहेति वा) सु सुष्ठु कोमलं मधुरं कल्याणकरं प्रियं वचनं सर्वेमंनुष्यः सदा वक्तव्यम् । (स्वा वागाहेति वा) या स्वकीया वाग् ज्ञानमध्ये वर्त्तते, सा यदाह तदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा वाच्यम् । (स्वंप्राहेति वा) स्वं स्वकीयपदार्थं प्रत्येव स्वत्वं वाच्यम्, न परपदार्थं प्रतिचेति । (स्वाहुतंहरु) सुष्ठुरीत्या संस्कृत्य संस्कृत्य हिवः सदा होतव्यमिति स्वाहाशब्दपर्य्यायार्थाः । स्वमेव पदार्थं प्रत्याह वयं सर्वदा सत्यं वदेम इति, न कदाचित् परपदार्थं प्रति मिथ्या वदेमेति ।। ३ ।।

भाषार्थ—(चित्रं देवाना०)। (सूर्यं ग्रात्मा०) प्राणी और जड़ जगत् का जो आत्मा है, उसको सूर्यं कहते हैं। (ग्राप्रा द्या०) जो सूर्यं और अन्य सब लोकों को बनाके धारण ग्रीर रक्षण करनेवाला है, (चक्षुमित्रस्य) जो मित्र ग्रर्थात् रागद्वेषरहित मनुष्य तथा सूर्यंलोक ग्रीर प्राण का चक्षु प्रकाश करनेवाला है, (वरुणस्या०) सब उत्तम कामों में जो वर्त्तमान मनुष्य प्राण ग्रपान ग्रीर ग्रिग्न का प्रकाश करनेवाला है, (चित्रं देवानां) में जो वर्त्तमान मनुष्य प्राण ग्रपान ग्रीर ग्रिग्न का प्रकाश करनेवाला है, (चित्रं देवानां) जो अद्भुतस्वरूप विद्वानों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है, (अनीकम्) जो सकल मनुष्यों के सब दुःख नाश करने के लिये परम उत्तम बल है, वह परमेश्वर (उदगात्) हमारे हृदयों में यथावत् प्रकाशित रहे।। ३।।

तच्चश्चेर्देवहितं पुरस्तांच्छुक्रमुच्चेरत् । पश्येम शारदेः शातं जीवेम शारदेः शातथ शृषुपाम शारदेः शातं प्र त्रंवाम शारदेः शातमदीनाः स्याम शारदेः शातं भूषंत्र शारदेः शात् ॥४॥ य० अ० ३६ । मं० २४ ॥

भाष्यम्—(चक्षुः) यत् सर्वदृक् (देवहितम्) देवेभ्यो हितं दिव्यगुणवता धर्मारमनां विदुषां स्वसेवकानां च हितकारि वर्त्तते यत् (पुरस्तात) सृष्टेः प्राक् (शुक्रम्) सैर्वजगरकतृ जुद्धमासीद्, इदानीमिष तादृशमेव चास्ति। तदेव (उच्चरत्) ग्रर्थात् उत्कृष्टतया सर्वत्र व्याप्तं विज्ञानस्वरूपं (उद्) प्रलयादूष्ट्वं सर्वसामध्यं स्थास्यति। (तत्) ब्रह्म (पश्येम शरदः शतम्) वयं शतं वर्षाणि तस्यैव प्रेक्षणं कुर्महे। तत्कृपया (जीवेम शरदः शतम्) शतं वर्षाणि प्राणान् धारयेमिहि। (शृणुयाम शरदः शतम्) तस्य गुणेषु श्रद्धाविश्वासवन्तो वयं तमेव शृणुयाम। तथा च तद् ब्रह्म तद्गुणांश्च (प्रव्रवाम-श०) ग्रन्येभ्यो मनुष्येभ्यो नित्यमुपदिशेम। (ग्रदीनाः स्याम श०) एवं च तदुपासनेन, तिद्वश्वासेन, तत्कृपया च शतवर्षपर्यन्तमदीना स्याम भवेम। मा कदाचित्कस्यापि समीपे दीनता कर्त्तंथ्या भवेन्नो दारिद्रघं च। सर्वदा सर्वथा ब्रह्मकृपया स्वतन्त्रा वयं भवेम। तथा (भूयश्च श०) वयं तस्यैवानुग्रहेण भूयः शताच्छरदः शताद्वर्षभ्योऽप्यधिकं पश्येम; जीवेम, श्रृणुयाम, प्रव्रवाम, ग्रदीनाः स्याम चेत्यन्वयः।

स्रयान्तैव मनुष्यास्तमितकृपालुं परमेश्वरं त्यक्त्वाऽन्यमुपासीरन् याचेरिन्नत्यिभि-प्रायः । "योऽन्यां देवतामुपास्ते पशुरेव १ स देवानाम् ।। श० कां० १४ । स्र० ४ । २ । २२ ॥" सर्वे मनुष्याः परमेश्वरमेवोपासीरन् । यस्तस्मादन्यस्योपासनां करोति, स इन्द्रियारामो गर्द्भवत्सर्वेशिशष्टैर्विज्ञेय इति निश्चयः ॥ ४ ॥

कृताञ्जलिरत्यन्तश्रद्धालुर्भू त्वैतैर्मन्त्रैः भ्रतुवन् सर्वकालसिद्ध्यर्थं परमेश्वरं प्रार्थयेत् । 3

भाषार्थ—(तच्चक्षुर्देवहितम्) जो ब्रह्म सब का द्रष्टा, धार्मिक विद्वानों का परम हितकारक, तथा (पुरस्ताच्छुकमुच्चरत्) सृष्टि के पूर्व, पश्चात् ग्रौर मध्य में सत्यस्वरूप से वर्त्तमान रहता, ग्रौर सब जगत् का करनेवाला है। (पश्येम शरदः शतम्) उसी ब्रह्म को हम लोग सो वर्ष पर्य्यन्त देखें (जोवेम शरदः शतम्) जीवें, (श्रृणुयाम शरदः शतम्) सुनें (प्रव्रवाम शरदः०) उसी ब्रह्म का उपदेश करें, (अदीनाः स्याम०) ग्रौर उस की कृपा से किसी के ग्राधीन न रहें। (भूयश्च शरदः शतात्) उसी परमेश्वर की ग्राज्ञा पालन ग्रौर कृपा से सौ वर्षों से उपरान्त भी हम लोग देखें, जीवें, सुनें, सुनावें ग्रौर स्वतन्त्र रहें।

श्रर्थात् ग्रारोग्य शरीर, दृढ़ इन्द्रिय, शुद्ध मन ग्रीर आनन्द सहित हमारा ग्रात्मा सदा रहे । यही एक परमेश्वर सब मनुष्यों का उपास्यदेव है । 'जो मनुष्य इसको छोड़ के दूसरे की उपासना करता है, वह पशु के समान होके सब दिन दु:ख भोगता रहता है' ।। ४ ।।

इसलिये प्रेम में अत्यन्त मग्न होके, अपने आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ के, इन मन्त्रों से स्तुति और प्रार्थना सदा करते रहें।

१,२,३, द्यार्यभाषार्थानुसारेण बहुवचनेन भाष्यम् । तच्चेत्थम् — श्रद्धालवो, स्तुवन्तः, प्रार्थयत । सं० ।

७५६

## पञ्चमहायज्ञविधिः

### ग्रथ गुरुमन्त्रः ---

ओ३म्, (य० म्र०४०। मं०१७) भूर्श्चवः स्वः । तत्संवितुर्वरेण्युम्भगौ देवस्यं धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

य० अ० ३६। मं० ३।। ऋ० मं० ३। सू० ६२। मं० १०।।

एवं त्रिषु वेदेषु समानो मन्त्रः ।।

भाष्यम्—ग्रस्य सर्वोत्कृष्टस्य गायत्रीमन्त्रस्य संक्षेपेणार्थं उच्यते—'ग्र उ म्' एतत्त्रयं मिलित्वा 'ग्रोम्' इत्यक्षरं भवति । यथाह मनुः—

"ग्रकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापितः। वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्युवः स्वरितीति च।।"

मनु० ग्र० २ । श्लोक० ७६ ।।

एतच्च सर्वोत्तमं प्रसिद्धतमं परब्रह्मणो नामास्ति । एतेनैकेनैव नाम्ना परमेश्वर-स्यानेकादि नामान्यायच्छन्तीति वेद्यम् । तद्यथा—

प्रकारेण विराडिनिविश्वादीनि—(विराट्) विविधं चराचरं जगद् राजयते प्रकाशयते स विराट् सर्वात्मेश्वरः । (ग्रन्निः) अच्यते प्राप्यते सिक्तियते वा वेदादिभिः शास्त्रैविद्विद्भिश्चेत्यिनः परमेश्वरः । (विश्वः) विष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् स विश्वः । यद्वा विष्टोस्ति प्रकृत्यादिषु यः स विश्वः । एतदाद्यर्था अकारेण विज्ञेयाः ।

उकारेण हिरण्यगर्भवायुतैजसादीनि । तद्यथा—(हिरण्यगर्भः) हिरण्यानि सूर्य्यानि तेजांसि गर्भे यस्य, तथा सूर्यादीनां तेजसां को गर्भोऽधिष्ठानं स हिरण्यगर्भः । अत्र प्रमाणम्—'ज्योतिवें हिरण्यं ज्योतिरेषोऽमृत्रि हिरण्यम् ।। श० कां० ६ । अ० ७ । आ० १ कं० २ ।।' 'यशो वे हिरण्यम् ।। ऐ० पं० ७ । खं० १८ ।।' (वायुः) यो वाति जानाति धारयत्यनन्तवलत्वात् सर्वं जगत् स वायुः । स चेश्वर एव भवितुमहंति नान्यः । 'तद्वायुः' इति मन्त्रवर्णादर्थाद् ब्रह्मणो वायुसंज्ञास्ति । (तैजसः) सूर्यादीनां प्रकाशकने स्वात्स्वयंप्रकाशस्वात् तैजस ईश्वरः । एतदाद्यर्था उकाराद् विज्ञातव्याः ।

मकारेणेश्वरादित्यप्राज्ञादीनि नामानि बोध्यानि । तद्यथा—(ईश्वरः) ईष्टेऽसी सर्वशक्तिमान् न्यायकारीश्वरः । (ग्रादित्यः) ग्रविनाशित्वादादित्यः परमात्मा । (प्राज्ञः) प्रजानाति सकलं जगदीति प्रज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञश्च परमात्मैवेति । एतदाद्यर्था मकारेण निश्चेतव्या ध्येयाश्चेति ।

अथ महाव्यहृत्यर्थाः संक्षेपतः—"भूरिति वै प्राणः । भुवरित्यपानः । स्वरिति व्यानः ।। इति तैत्तिरीयोपनिषद्वचनम् । प्रपा० ७ । अनु० ६ ॥" (भूः) प्राणयि जीवयित सर्वान् प्राणिनः स प्राणः, प्राणादिप प्रियस्वरूपो वा, स चेश्वर एव । श्रयमर्थी

भूशब्दस्य ज्ञेय: । (भुव:) यो मुमुक्षाणां मुक्तानां स्वसेवकानां धर्मात्मनां सर्वं दु:खमपान-यति दूरीकरोति सोऽपानो दयालुरीश्वरोऽस्ति । अयं भुव:शब्दार्थोऽस्तीति बोध्यम् । (स्व:) यदभिव्याप्य व्यानयति चेष्टयति प्राणादि सकलं जगत् स व्यानः, सर्वाधिष्ठानं बृहद् ब्रह्मोति । खल्वयं स्व:शब्दार्थोऽस्तीति मन्तव्यम् । एतदाद्यर्था महाव्याहृतीनां ज्ञातव्याः ।

(सिवतुः) सुनोति सूयते सुवित वोत्पादयित सृजित सकलं जगत् स सर्विपिता सर्वेश्वरः सिवता परमात्मा तस्यः 'सिवतुः प्रसवे' इति मन्त्रपदार्थादुत्पत्तेः कर्त्ता योऽयोस्ति स सिवतेत्युच्यत इति मन्तव्यम् । (वरेण्यम्) यद्वरं वर्त्तुं मर्हमितिश्रेष्ठं तद्वरेण्यम् (भगः) यन्निरुपद्ववं निष्पापं निर्गुणं शुद्धं सकलदोषरिहतं पववं परमार्थ-विज्ञानस्वरूपं तद्भगः । (देवस्य) यो दीव्यति प्रकाशयित खल्वानन्दयित सर्वं विश्वं स देवः, तस्य देवस्य (धीमिह्) तमेव परमात्मानं वयं नित्यमुपासीमिह् । कस्मै प्रयोजनाय ? तस्य धारणेन विज्ञानादिवलेनैव वयं पुष्टा दृढा सुखिनश्च भवेमेत्यस्मै प्रयोजनाय । तथा च (यः) परमेश्वरः (नः) अस्माकं (धियो) धारणवतीवुं द्धीः (प्रचोदयात्) प्रेरयेत् ।

हे सिच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, हे ग्रज, हे निराकार, सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन् हे करुणामृतवारिधे ! सिवतुर्देवस्य तव यद्वरेण्यं भगंस्तद्वयं धीमितः कस्मै प्रयोजनाय ? यः सिवता देवः परमेश्वरः स, नोऽस्माकं धियो बुद्धीः प्रचोदयात् । यो हि सम्यग्ध्यातः प्राधितः सर्वेष्टदेवः परमेश्वरः स्वकृपाकटाक्षेण प्रचोदयात् । यो हि सम्यग्ध्यातः प्राधितः सर्वेष्टदेवः परमेश्वरः स्वकृपाकटाक्षेण स्वशक्तिया च ब्रह्मचर्यविद्याविज्ञानसद्धमंजितेन्द्रियत्वपरब्रह्मानन्दप्राप्तिमतीरस्माकं धीः कुर्यादस्मै प्रयोजनाय । तत्परमात्मस्वरूपं वयं धीमहोति संक्षेपतो गायव्यर्थो विज्ञेयः ॥

एवं प्रातः सायं द्वयोः सन्ध्योरेकान्तदेशं गत्वा शान्तो भूत्वा यतात्मा सन् परमेश्वरं प्रतिदिनं ध्यायेत्।

साधार्थ— ध्रथ गुरुमन्त्रः—(ग्रोम् भूर्भुव: स्व:)। ग्रकार उकार ग्रीर मकार के योग से 'ग्रोम्' यह अक्षर सिद्ध है, सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है, जिसमें सब नामों के ग्रथं ग्रा जाते हैं। जैसा पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है, वैसे ही ग्रीकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है। इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है।

जैसे ग्रकार से—(विराट्) जो विविध जगत् का प्रकाश करनेवाला है। (ग्रग्निः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है। (विश्वः) जिसमें सब जगत् प्रवेश कर रहा है, ग्रीर जो सर्वत्र प्रविष्ट है। इत्यादि नामार्थं ग्रकार से जानना चाहिये।

उकार से—(हिरण्यगर्भः) जिनके गर्भ में प्रकाश करनेवाले सूर्यादि लोक हैं, गौर जो प्रकाश करनेहारे सूर्यादिलोकों का ग्रिधिष्ठान है। इससे ईश्वर को 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं। हिरण्य के नाम ज्योति, अमृत ग्रीर कीत्ति हैं। (वायुः) जो ग्रनन्त बलवाला

### पञ्चमहायज्ञविधिः

सब जगत् का धारण करनेहारा है। (तैजसः) जो प्रकाशस्वरूप ग्रीर सब जगत् का प्रकाशक है। इत्यादि ग्रथं उकारमात्र से जानना चाहिये।

तथा मकार से—(ईश्वरः) जो सब जगत् का उत्पादक, सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी है। (आदित्यः) जो नाशरहित है। (प्राज्ञः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है। इत्यादि अर्थं मकार से समक्त लेना। यह संक्षेप से श्रोंकार का अर्थ किया गया।

अब संक्षेप से महान्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं—(भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीने का हेतु, और प्राण से भी प्रिय है, इससे परमेश्वर का नाम 'भूः' है। (भुविरत्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वालों, मुक्तों भ्रौर अपने सेवक धर्मात्माग्रों को, सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है, इसलिए परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। (स्विरिति व्यानः) जो सब जगत् से व्यापक होके सब को नियम में रखता, श्रौर सब का ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है, इससे परमेश्वर का नाम 'स्वः' है। यह व्याहृतियों का संक्षेप से सर्थ लिख दिया।

अब गायत्री मन्त्र का ग्रथं लिखते हैं—(सिवतुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा, ग्रौर ऐश्वर्यं का देनेवाला है, (देवस्य) जो सब के आत्माग्रों का प्रकाश करनेवाला और सब सुखों का दाता है, उसका (वरेण्यम्) जो ग्रत्यन्त ग्रहण करने के योग्य, (भगः) शुद्ध विज्ञान स्वरूप है, (तत्) उसको (धीमहि) हम लोग सदा प्रेमभक्ति से निश्चय करके ग्रपने आत्मा में धारण करें। किस प्रयोजन के लिये? कि (यः) जो पूर्वोक्त सिवता देव परमेश्वर है, वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके सब बुरे कामों से ग्रलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे।

इसिलये सब लोगों को चाहिये कि सत् चित् ग्रानन्दस्वरूप, नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, ग्रजन्मा, निराकार, सर्वशिक्तमान्, न्यायकारी, व्यापक, कृपालु, सब जगत् के जनक और धारण करनेहारे परमेश्वर ही की सदा उपासना करें, कि जिससे धर्म, ग्रथं काम ग्रौर मोक्ष जो मनुष्यदेह रूप वृक्ष के चार फल हैं, वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वथा सब मनुष्यों को प्राप्त हों। यह गायत्री मन्त्र का ग्रथं संक्षेप से हो चुका।।

## ग्रथ समर्पणम्—

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्य: सिद्धिर्भवेत्रः ॥

# तत ईश्वरं नमस्कुर्यात् —

भाषार्थ — इस प्रकार से सब मन्त्रों के ग्रर्थों से परमेश्वर की सम्यक् उपासना करके ग्रागे समर्प्यण करे — िक हे ईश्वर दयानिधे ! आपकी कृपा से जो जो उत्तम काम हम लोग करते हैं, वे सब आपके अपंण हैं। जिससे हम लोग ग्रापको प्राप्त होके धर्म — जो सत्य न्याय का ग्राचरण करना है, अर्थ — जो धर्म से पदार्थों की प्राप्त करना है,

७४५

### सन्घ्योपासनम्

928

काम—जो धर्म और ग्रर्थ से इब्ट भोगों का सेवन करना है, ग्रीर मोक्ष—जो सब दुःखों से छूटकर सदा ग्रानन्द में रहना है, इन चार पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त हो।।

इसके पीछे ईश्वर को नमस्कार करे-

ओं नर्मः शम्भवार्य च मयोभवार्य च नर्मः शङ्कुरार्य च मयस्कुरार्य च नर्मः शिवार्य च शिवर्तराय च ॥ य० अ० १६। मं० ४१॥

भाष्यम्—( नमः शम्भवाय च ) यः सुखस्वरूपः परमेश्वरोऽस्ति, तं वयं नमस्कुर्महे । (मयोभवाय च) यः संसारे सर्वोत्तमसौद्ध्यप्रदातास्ति, तं वयं नमस्कुर्महे । (नमः शङ्कराय च) यः कल्याणकारकः सन् धर्मयुक्तानि कार्य्याण्येव करोति, तं वयं नमस्कुर्महे । (मयस्कराय च) यः स्वभक्तान् सुखकारकत्वाद् धर्मकार्येषु युनक्ति, तं वयं नमस्कुर्महे । (नमः शिवाय च शिवतराय च) योऽत्यन्तमङ्गलस्वरूपः सन् धार्मिक-मनुष्येभ्यो मोक्षसुखप्रदातास्ति, तस्मै परमेश्वरायास्माकमनेकधा नमोऽस्तु ॥

भाषार्थ—(नमः शम्भवाय च) जो सुखस्वरूप, (मयोभवाय च) संसार के उत्तम सुखों का देनेवाला, (नमः शङ्कराय च) कत्याण का कर्त्ता, मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कामों को ही करने वाला, (मयस्कराय च) ध्रपने भक्तों को सुख देने वाला और धर्म कामों में युक्त करने वाला, (नमः शिवाय च शिवतराय च) ध्रत्यन्त मङ्गलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देनेहारा है, उसको हमारा बारम्बार नमस्कार हो।।

इति सन्ध्योपासनविधिः

# अथाग्निहोत्रसन्ध्योपासनयोः प्रमागानि—

सायंसीयं गृहपतिनीं अग्निः प्रातःश्रांतः सौमन्सस्यं दाता । वसीर्वसोर्वसुदानं एघि वृयं त्वेन्घांनास्तुन्वं पुषेम ॥१॥ प्रातःश्रांतर्गृहपतिनीं अग्निः सायंसीयं सौमन्सस्यं दाता । वसीर्वसोवसुदानं एघीन्घांनास्त्वा शतिहमा ऋषेम ॥२॥ अथवं० कां० १९ । स्० ५५ । मं० ३, ४ ॥

तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते । स ज्योतिष्या ज्योतिषो दर्शनात् सोऽस्याः, कालः, सा सन्ध्या । तत् सन्ध्यायाः सन्ध्यात्वम् ॥ ३ ॥ पड्विंश ब्रा०प्रपा०४ । खं०५ ॥

उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिष्यायन् कुवंन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमञ्जूते ॥ ४ ॥ तैत्तिरीय ब्रा०२ । प्रपा०२ । अनु०२ ॥

[पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात् । पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥ ५ ॥ ]

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् । स शूद्रबद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ ६ ॥

मनु० ग्र० २ । श्लो० [१०१,] १०३ ।।

भाष्यम् — प्रयं (नः) अस्माकं (गृहपतिः ) गृहात्मपालकोऽग्निः भौतिकः परमेश्वरहच (प्रातः-प्रातः) तथा (सायं-सायं) च परिचरितस्सूपासितः सन् (सौमनसस्य
दाता) ग्रारोग्यस्यानन्दस्य च दाता भवति । तथा (वसोर्वः ) उत्तमोत्तमपदार्थस्य च ।
ग्रत एव परमेश्वरः (वसुदानः) वसुप्रदातास्ति । हे परमेश्वर ! एवंभूतस्त्वमस्माकं
राज्यादिव्यवहारे हृदये च (एधि) प्राप्तो भव । तथा भौतिकोऽप्यग्निरत्र ग्राह्यः । (वयं)
हे परमेश्वर ! एवं (त्वाम्) त्वा (इन्धानाः) प्रकाशयितारस्सन्तो वयं (तन्वम्) शरीरं
(पुपेम) पुष्टं कुर्याम । तथाग्निहोत्रादिकर्मणा भौतिकमग्निन्धानाः प्रदीपयितारः
सन्तः सर्वे वयं पुष्येम ।। १ ।।

(प्रातःप्रातर्गृहपितनों०) अस्यार्थः पूर्वविद्वज्ञेयः । परन्तवयं विशेषः-वयमिन-होत्रमीश्वरोपासनं च कुर्वन्तः सन्तः (शतिहमाः) शतं हिमा हेमन्तर्तवो गच्छन्ति येषु संवत्सरेषु ते शतिहमा यावत्स्युस्तावत् (ऋषेम) वर्द्धेमहि । एवं कृतेन कर्म्मणा नोऽस्माकं नैव कदाचिद्धानिभवेदितीच्छामः ।। २ ।।

### श्रग्निहोत्रसन्ध्योपासनयोः प्रमाणानि

७६१

भाषार्थ—(सायंसायं०) यह हमारा गृहपित अर्थात् घर ग्रौर आत्मा का रक्षक भौतिक ग्रिग्न ग्रौर परमेश्वर प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल श्रेष्ठ उपासना को प्राप्त होके (सौमनसस्य दाता) जैसे ग्रारोग्य ग्रौर ग्रानन्द का देने वाला है उसी प्रकार उत्तम से उत्तम वस्तु का देने वाला है। इसी से परमेश्वर (वसुदानः) वसु ग्रर्थात् धन का देने वाला प्रसिद्ध है। हे परमेश्वर ! इस प्रकार ग्राप मेरे राज्य ग्रादि व्यवहार ग्रौर चित्त में प्रकाशित रहिये। तथा इस मन्त्र में ग्रग्निहोत्र आदि करने के लिये भौतिक ग्रिग्न भी ग्रहण करने योग्य है। (वयं त्वे०) हे परमेश्वर ! पूर्वोक्त प्रकार से हम आपको प्रकाश करते हुए ग्रपने शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें। इसी प्रकार भौतिक ग्रिग्न को प्रज्ज्वलित करते हुए सब संसार की पुष्टि करके पुष्ट हों।। १।।

(प्रातःप्रातगृंहपितनों०) इस मन्त्र का ग्रर्थ पूर्व मन्त्र के तुल्य जानो । परन्तु यह विशेष है कि—अग्निहोत्र ग्रीर ईश्वर को उपासना करते हुए हम लोग (शतिहमाः) सी हेमन्त ऋतु बीत जायं जिन वर्षों में, ग्रर्थात् सी वर्ष पर्यन्त (ऋषेम) धनादि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त होते रहें । ग्रीर पूर्वोक्त प्रकार से ग्राग्निहोत्रादि कमं करके हमारी हानि कभी न हो, ऐसी इच्छा करते हैं ।। २ ।।

(तस्माद् बाह्मणो०) ब्रह्म का उपासक मनुष्य रात्रि श्रौर दिवस के सन्धि समय में नित्य उपासना करे। जो प्रकाश श्रौर श्रप्रकाश का संयोग है, वही सन्ध्या का काल जानना। श्रौर उस समय में जो सन्ध्योपासन की ध्यानिक्रया करनी होती है, वही सन्ध्या है। श्रौर जो एक ईश्वर को छोड़ के दूसरे की उपासना न करनी तथा सन्ध्यो-पासन कभी न छोड़ देना, इसी को सन्ध्योपासना कहते हैं।।३।।

(उद्यन्तमस्तं यान्त) जब सूर्य्यं के उदय ग्रीर ग्रस्त का समय आवे, उसमें नित्य प्रकाशस्वरूप आदित्य परमेश्वर की उपासना करता हुग्ना, ब्रह्मोपासक ही मनुष्य सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि दो समय में परमेश्वर की नित्य उपासना किया करें।।४।।

इसमें मनुस्मृति की भी साक्षी है कि दो घड़ी रात्रि से लेके सूर्योदय पर्यंन्त प्रात:सन्ध्या, ग्रौर सूर्यास्त से लेकर तारों के दर्शन पर्यंन्त सायंकाल में सविता अर्थात् सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले परमेश्वर की उपासना गायत्र्यादि मन्त्र के अर्थ विचारपूर्वक नित्य करें ।।५।।

(न तिष्ठित तु॰) जो मनुष्य नित्य प्रातः ग्रौर सायं सन्ध्योपासन को नहीं करता, उसको शूद्र के समान समभ कर द्विजकुल से ग्रलग करके शूद्र कुल में रख देना चाहिये। वह सेवाकर्म किया करे, और उसके विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिये। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि सब कामों से इस काम को मुख्य जानकर पूर्वोक्त दो समयों में जगदीश्वर की उपासना नित्य करते रहें।।६।।

इत्यग्निहोत्रसन्ध्योपासनप्रमाणानि ।।

इति प्रथमो ब्रह्मयज्ञः समाप्तः ॥

# अथ द्वितीयोऽग्निहोत्रो देवयज्ञः प्रोच्यते

उसका ग्राचरण इस प्रकार से करना चाहिये कि सन्ध्योपासन करने के पश्चात् अग्निहोत्र का समय है। उसके लिये सोना, चांदी, तांबा, लोहा वा मिट्टी का कुण्ड बनवा लेना चाहिये, जिसका परिमाण सोलह अंगुल चौड़ा, सोलह अंगुल गहिरा ग्रीर उसका तला चार अंगुल का लम्बा चौड़ा रहे। एक चमसा जिसकी डंडी सोलह अंगुल ग्रीर उसके अग्रभाग में अंगूठा की यवरेखा के प्रमाण से लम्बा चौड़ा ग्राचमनी के समान बनवा लेवे, सो भी सोना, चांदी वा पलाशादि लकड़ी का हो। एक ग्राज्य-स्थाली ग्रर्थात् घृतादि सामग्री रखने का पात्र सोना, चांदी वा पूर्वोक्त लकड़ी का बनवा लेवे। एक जल का पात्र तथा एक चिमटा ग्रीर पलाशादि की लकड़ी सिमधा के लिये रख लेवे।

पुन: घृत को गर्म कर छान लेवे। ग्रीर एक सेर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर पीस के मिलाकर उक्त पात्र के तुल्य दूसरे पात्र में रख छोड़े। जब अग्निहोत्र करे तब गुद्ध स्थान में बैठ के पूर्वोक्त सामग्री पास रख लेवे। जल के पात्र में जल ग्रीर घी के पात्र में एक छटांक वा ग्रधिक जितना सामर्थ्य हो, उतने शोधे हुए घी को निकाल कर ग्राग्न में तपा के सामने रख लेवे। तथा चमसे को भी रख लेवे। पुन: उन्हीं पलाशादि वा चन्दनादि लकड़ियों को वेदी में रखकर, उनमें ग्रागी धरके पंखे से प्रदीप्त कर नीचे लिखे मन्त्रों में से एक एक मन्त्र से एक एक आहुति देता जाय, प्रात:-काल वा सायंकाल में। ग्रथवा एक समय में करे, तो सब मन्त्रों से सब आहुति किया करे।

## श्रथाग्निहोत्रहोमकरणार्थाः मन्त्राः--

ओं स्र्यों ज्योतिज्योंतिः स्र्यः स्वाही ॥१॥ ओं स्र्यों वज्नों ज्योतिर्वज्नः स्वाही ॥२॥ ओं ज्योतिः स्र्यः स्य्योज्योतिः स्वाही ॥३॥ ओं स्र्वेवेने सिवता सजूरुषसेन्द्रेवस्या। जुनाणः स्र्यों वेतु स्वाही ॥४॥

एते चत्वारो मन्त्राः प्रातःकालस्य सन्तीति बोध्यम् ।

ओमुग्निज्योंतिज्योतिरुग्निः स्वाहां ॥१॥ ओमुग्निर्वज्जों ज्योतिर्वज्जीः स्वाहां ॥२॥

#### देवयज्ञविधिः

७६३

'अग्निज्योंतिः'० ॥३॥ इति मन्त्रं मनसोच्चार्यं तृतीयाहुतिर्देया । ओं सुजूर्देवेने सिवृत्रा सुजूरात्र्येन्द्रंवत्या । जुषाणोऽञ्जग्निवेतु स्वाह्यं ॥४॥ य० अ०३ । मं० ६, १० ॥

एते सायंकालस्य मन्त्राः सन्तीति वेदितव्यम् ।

ग्रयोभयोः कालयोरग्निहोत्रे होमकरणार्थास्समाना मन्त्राः-

श्रों भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ १ ॥

स्रों भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ।। २ ।।

श्रों स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।। ३ ।।

श्रों भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥ श्रोम् श्रापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥ ४ ॥ श्रों सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ॥ ६ ॥

भाष्यम्—(सूर्यो०) यश्चराचरात्मा ज्योतिषां प्रकाशकानामि ज्योतिः प्रकाशकः सर्वप्राणः परमेश्वरोऽस्ति, तस्मै स्वाहाऽर्थात् तदाज्ञापालनार्थं सर्वजगदुपकारायैकाहुति दयः ॥ १ ॥

(सूर्यो व०) यो वर्ज्यः सर्वविद् यो ज्योतिषां ज्ञानवतां जीवानामपि वर्ज्योऽन्त-र्यामितया सत्योपदेष्टा, सर्वात्मा सूर्य्यः परमेश्वरोऽस्ति, तस्मै० ॥ २ ॥

(ज्योति: सूर्य्यं:०) यः स्वयंप्रकाशः, सर्वजगत्प्रकाशकः सूर्यो जगदीश्वरोऽस्ति, तस्मै० ।। ३ ।।

(सजू०) यो देवेन द्योतकेन सिवता सूर्य्यलोकेन जीवेन च सह, तथा (इन्द्रवत्या) सूर्य्यप्रकाशवत्योषसाथवा जीववत्या मानसवृत्त्या (सजूः) सह वर्त्तमानः परमेश्वरोऽस्ति, सः (जुषाणः) संप्रीत्या वर्त्तमानः सन् (सूर्यः) सर्वीत्मा कृपाकटाक्षेणास्मान् (वेतु) विद्यादिसद्गुणेषु जातविज्ञानान् करोतु, तस्मै० ॥ ४ ॥

इमाश्चतस्र माहुतीः प्रातरग्निहोत्रे कुर्वन्तु ।

श्रथ सायंकालाहुतयः—(ग्रग्नि०) योऽग्निर्ज्ञानस्वरूपो ज्ञानप्रदश्च, ज्योतिषां ज्योतिः परमेश्वरोऽस्ति, तस्मै० ॥ १ ॥

(ग्रग्निर्वच्चों०) यः पूर्वोक्तोऽग्निरनन्तविद्य, ग्रात्मप्रकाशकः, सर्वपदार्थ-प्रकाशकश्च सूर्यादिद्योतकोऽस्ति, तस्मै० ॥ २ ॥

(म्रग्निज्योंतिः) इत्येनेनैव तृतीयाहुतिर्देया तदर्थंश्च पूर्ववत् ।। ३ ।।

(सजुर्दे०) यः पूर्वोक्तेन देवेन सिवत्रा सह परमेश्वरः सजूरस्ति । यश्चेन्द्रबत्या

9 E 8

### पञ्चमहायज्ञविधिः

वायुश्चन्द्रवत्या रात्र्या सह सजूर्वर्त्तते, सोऽग्निः (जुषाणः) संप्रीतोऽस्मान् (वेतु) नित्या-नन्दमोक्षसुखया स्वकृपया कामयतु । तस्मै जगदीश्वराय स्वाहेति पूर्ववत् ॥ ४ ॥

एताभि: सायंकालेऽग्निहोत्रिणो जह्नति । एकस्मिन् काले सर्वाभिर्वा ।

(ग्रों भूर०) एतानि सर्वाणीश्वरनामान्येव वैद्यानि । एतेषामर्था गायत्र्यर्थे द्रष्टव्याः ।। १—५ ।।

(सर्वं वै०) हे जगदीश्वर ! यदिदमस्माभिः परोपकारार्थं कर्म क्रियते, भवत्कृपया परोपकारायालं भवत्विति । एतदर्थमेतत्कम्मं तुभ्यं समर्प्यंते ।। ६ ।।

एवं प्रातःसायं सन्ध्योपासनकरणानन्तरमेतैर्मन्त्रैहोंमं कृत्वाऽग्रे यावदिच्छा तावद्गायत्रीमन्त्रेण स्वाहान्तेन होमं कुर्यात् ।

ग्रग्नये परमेश्वराय जलवायुशुद्धिकरणाय च होत्रं हवनं यस्मिन् कर्मणि क्रियते 'तदिग्नहोत्रम्' । सुगन्धिपुष्टिमिष्टबुद्धिवृद्धिशौर्यधैर्य्यवलकरेरोगनाशकरेर्गु णैर्यु कानां द्रव्याणां होमकरणेन वायुवृष्टिजलयोः शुद्धचा पृथिवीस्थपदार्थानां सर्वेषां शुद्धवायुजल-योगादत्यन्तोत्तमतया सर्वेषां जीवानां परमसुखं भवत्येव । ग्रतस्तत्कर्मतृंणां जनानां तदुपकारतयाऽत्यन्तसुखलाभो भवतीश्वरप्रसन्नता चेत्येतदाद्यर्थमग्निहोत्रकरणम् ।

भाषार्थ—(सूर्य्यो ज्यो०) जो चराचर का स्रात्मा प्रकाशस्वरूप स्रीर सूर्यादि-प्रकाशक लोकों का भी प्रकाशक है, उसकी प्रसन्नता के लिये हम लोग होम करते हैं ।। १।।

(सूर्यों व०) जो सूर्य परमेश्वर हम को सब विद्यास्रों का देनेवाला, स्रौर हम लोगों से उनका प्रचार कराने वाला है, उसी के अनुग्रह के लिये हम लोग अग्निहोत्र करते हैं।। २।।

(ज्योति: सूर्य्यः०) जो आप प्रकाशमान भ्रौर जगत् का प्रकाश करने वाला, सूर्य्य अर्थात् सब संसार का ईश्वर है, उसकी प्रसन्नता के अर्थ हम लोग होम करते हैं ।। ३।।

(सजूर्देवेन०) जो परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्यापक, वायु ग्रौर दिन के साथ परिपूर्ण सब पर प्रीति करने वाला, ग्रौर सबके ग्रङ्ग ग्रङ्ग में व्याप्त है। वह ग्रग्नि परमेश्वर हमको विदित हो। उसके ग्रथं हम होम करते हैं।। ४।।

इन चार ग्राहुतियों को प्रातःकाल ग्रग्निहोत्र में करना चाहिये।

(ग्रग्निज्यों) ग्रग्नि जो परमेश्वर ज्योति:स्वरूप है, उसकी आज्ञा से हम परोपकार के लिये होम करते हैं। ग्रौर उसका रचा हुग्रा जो यह भौतिकाग्नि है, जिसमें द्रव्य डालते हैं सो इसलिये है कि उन द्रव्यों को परमाणु करके जल और वायु, वृद्धि के साथ मिलाके उनको शुद्ध करदे। जिससे सब संसार सुखी होके पुरुषार्थी हो।। १।।

(अग्निर्वच्चों ०) ग्रग्नि जो परमेश्वर वर्च्च अर्थात् सब विद्याग्रों का देने वाला,

### देवयज्ञविधि:

664

तथा भौतिक अग्नि म्रारोग्य भौर बुंद्धि बढ़ाने का हेतु है । इसलिये हम लोग होम करके परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं । यह दूसरी म्राहुति हुई ।। २ ।।

तीसरी ब्राहुति प्रथम मन्त्र से मौन करके करनी चाहिये।। ३।।

श्रौर चौथी (सजूर्देवेन०) जो परमेश्वर प्राणादि वायु में व्यापक, वायु श्रौर रात्रि के साथ पूर्ण, सब पर प्रीति करने वाला ग्रौर सब के ग्रङ्ग ग्रङ्ग में व्याप्त है, वह ग्रग्नि परमेश्वर हमको प्राप्त हो । जिसके लिये हम होम करते हैं ।। ४ ।।

अब जिन मन्त्रों से वोनों समय में होम किया जाता है, उनको लिखते हैं—(ग्रों भू०) इन मन्त्रों में जो जो नाम हैं, वे सब ईश्वर के ही जानो। उनके ग्रर्थ गायत्री मन्त्र के ग्रर्थ में देखने योग्य हैं।। १—४।।

और (आपो॰) 'ग्राप' जो प्राण परमेश्वर प्रकाश को प्राप्त होके रस ग्रर्थात् नित्यानन्द मोक्षस्वरूप है, उस ब्रह्म को प्राप्त होकर तीनों लोकों में हम लोग आनन्द से विचरें ।। प्र !।

[ (सर्व वै०) हे जगदीश्वर ! हम परोपकार के लिये जिस कर्म को करते हैं, वह कर्म ग्रापकी कृपा से परोपकार के लिये समर्थ हो । इसलिये यह कर्म ग्राप के समर्पण है ॥ ६ ॥ ] •

इस प्रकार प्रातः स्नीर सायंकाल सन्ध्योपासना के पीछे इन पूर्वोक्त मन्त्रों से होम करके स्रधिक होम करने की जहाँ तक इच्छा हो वहां तक 'स्वाहा' अन्त में पढ़कर गायत्री मन्त्र से होम करें।

ग्राग्न वा परमेश्वर के लिये, जल ग्रोर पवन की शुद्धि, वा ईश्वर की आज्ञा पालन के ग्रंथं होत्र जो हवन ग्रंथांत् दान करते हैं, उसे 'ग्राग्नहोत्र' कहते हैं। केशर, कस्तूरी ग्रादि सुगन्ध; घृत दुग्ध ग्रादि पुष्ट; गुड़ शकरा ग्रादि मिष्ट तथा सोमलतादि ओषधि रोगनाशक, जो ये चार प्रकार के बुद्धि, वृद्धि, शूरता, धीरता, बल ग्रोर आरोग्य करने वाले गुणों से युक्त पदार्थ हैं, उनका होम करने से पवन और वर्षाजल की शुद्धि करने बाले गुणों से युक्त पदार्थ हैं, उनका होम करने से पवन और वर्षाजल की शुद्धि करके शुद्ध पवन ग्रोर जल के योग से पृथिवी के सब पदार्थों की जो ग्रत्यन्त उत्तमता होती है, उससे सब जीवों को परम सुख होता है। इस कारण उस ग्राग्नहोत्र कर्म होती है, उससे नवुष्यों को भी जीवों के उपकार करने से ग्रन्यन्त सुख का लाभ होता है। करने वाले मनुष्यों को भी जीवों के उपकार करने से ग्रन्यन्त सुख का लाभ होता है। तथा ईश्वर भी उन मनुष्यों पर प्रसन्त होता है। ऐसे ऐसे प्रयोजनों के ग्रर्थ ग्राग्नहोत्रादि का करना अत्यन्त उचित है।

इत्यग्निहोत्रविधिः समाप्तः ॥

गर कोड्यान्तर्गत पाठ प्रथम संस्करण में नहीं है । संस्कृतानुसार पूरा किया है ।। सं०

# अथ तृतीयः पितृयज्ञः

तस्य द्वी भेदी स्तः — एकस्तर्पणाख्यो, द्वितीयः श्राद्धाख्यश्च । तत्र येन कर्मणा विदुषो देवानृषीन् पितृ श्च तर्पयन्ति सुखयन्ति तत् 'तर्पणम्' । तथा यत्तेषां श्रद्धया सेवनं श्रियते तच्छाद्धं वेदितव्यम् । तदेतत् कर्म विद्वत्सु विद्यमानेष्वेव घटचते, नैव मृतकेषु । कुतः, तेषां सन्निकर्षाभावेन सेवानाशक्यत्वात् । मृतकोद्देशेन यत्कियते, नैव तेभ्यस्तत्प्राप्तं भवतीति व्यर्थापत्तेः । तस्माद्विद्यमानाभिप्रायेणैतत्कर्मोपदिश्यते । सेव्यसेवकसन्निकर्षात् सर्वमेतत्कर्तुं शक्यत इति ।

तत्र सत्कत्तंव्यास्त्रयः सन्ति—देवाः, ऋषयः, पितरश्च । तत्र

देवेषु प्रमाणम्'-

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मन<u>सा</u> धिर्यः। - पुनन्तु विश्वो भूतानि जातवेदः पु<u>नी</u>हि मा ॥२॥

य० ग्र० १६। मं० ३६॥

द्वयं वाऽइदं न तृतीयमस्ति । सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा श्रनृतं मनुष्या, इदमहमनृतात् सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति । स वै सत्यमेव वदेत् । एतद्धि वै देवा वतं चरन्ति यत् सत्यं, तस्मात् ते यशो यशोह भवति य एवं विद्वान्त्सत्यं वदित ।। २ ।।

शत० को० १। ग्र० १। ब्रा० १। कं० ४, ५।।

विद्वांश्रसो हि देवाः ।।३।। शत० कां०३। ग्र०७। त्रा०६। कं०१०।।

माध्यम् हे (जातवेदः) परमेश्वर ! (मा) मां (पुनीहि) सर्वथा पिवत्रं कुरु । भवित्रष्ठा भवदाज्ञापालिनो (देवजनाः) विद्वांसः श्रेष्ठा ज्ञानिनो विद्यादानेन (मा) मां (पुनन्तु) पिवत्रं कुर्वन्तु । तथा (पुनन्तु मनसा धियः) भवद्दत्तविज्ञानेन भवद्विषयध्यानेन वा नो बुद्धयः पुनन्तु पिवत्रा भवन्तु । (पुनन्तु विश्वा भूतानि) विश्वानि सर्वाणि संसार-स्थानि भूतानि पुनन्तु भवकृपया पिवत्राणि सुखानन्दयुक्तानि भवन्तु ।। १ ।।

(द्वयां वा॰) मनुष्याणां द्वाभ्यां लक्षणाभ्यां द्वे एव संज्ञे भवतः—देवाः, मनुष्या-इचेति । तत्र सत्यं चैवानृतं च कारणे स्तः । (सत्यमेव०) यत् सत्यवचनं सत्यमानं सत्यं कर्मेतद्देवानां लक्षणं भवति । तथैतदनृतं वचनमनृतं मानमनृतं कर्मं चेति मनुष्याणाम् । योऽनृतात् पृथग्भूत्वा सत्यमुपेयात्, स देवजातौ परिगण्यते । यश्च सत्यात् पृथग्भूत्वाऽनृ-तमुपेयात्, स मनुष्यसंज्ञां लभेत । तस्मात्सत्यमेव सर्वदा वदेन्मन्येत कुर्याच्च । यत् सत्यं

१. जातावेकयचनम् एवं सर्वत्र ॥ सं०

### पितृयज्ञविधिः

930

व्रतमस्ति, तदेव देवा ग्राचरन्ति । स यशस्विनां मध्ये यशस्वीति देवो भवति, तद्विपरीतो मनुष्यरुच ।। २ ।।

तस्मादत्र विद्वांस एव देवास्सन्तीति ।। ३ ।।

भाषार्थ — ग्रव तीसरा पितृयज्ञ कहते हैं। उसके दो भेद हैं — एक तपंण दूसरा श्राद्ध। 'तपंण' उसे कहते हैं, जिस कमें से विद्वान्रूप देव, ऋषि ग्रोर पितरों को सुख-युक्त करते हैं। उसी प्रकार जो उन लोगों का श्रद्धा से सेवन करना है, सो 'श्राद्ध' कहाता है। यह तपंण आदि कमें विद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष हैं, उन्हों में घटता है, मृतकों में नहीं। क्यों कि उनकी प्राप्त और उनका प्रत्यक्ष होना दुर्लभ है। इसी से उनकी सेवा भी किसी प्रकार से नहीं हो सकती। किन्तु जो उनका नाम लेकर देवे वह पदार्थ उनको कभी नहीं मिल सकता, इसलिये मृतकों को सुख पहुँचाना सर्वया ग्रसंभव है। इसी कारण विद्यमानों के ग्रभिप्राय से तपंण ग्रौर श्राद्ध वेद में कहा है। सेवा करने योग्य और सेवक अर्थात् सेवा करनेवाले इनके प्रत्यक्ष होने पर यह सब काम हो सकता है।

तर्पण आदि कर्म में सत्कार करने योग्य तीन हैं—देव, ऋषि ग्रीर पितर। उनमें से देशों में प्रमाण—

(पुनन्तु०) हे जातवेद परमेश्वर! आप सब प्रकार से मुक्तको पिवत्र करें। जिनका चित्त ग्राप में है, तथा जो ग्रापकी ग्राज्ञा पालते हैं, वे विद्वान् श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष भी विद्यादान से मुक्त को पिवत्र करें। उसी प्रकार आपका दिया जो विशेष ज्ञान वा ग्रापके विषय का ध्यान उससे हमारी बुद्धि पिवत्र हो। (पुनन्तु विश्वाभूतानि) ग्रीर संसार के सब जीव ग्रापकी कृपा से पिवत्र ग्रीर ग्रानन्दयूक्त हों।। १।।

(द्वयं वा०) दो लक्षणों से मनुष्यों की दो संज्ञा होती हैं अर्थात् देव और मनुष्य। वहां सत्य और भूठ दो कारण हैं। (सत्यमेव०) जो सत्य बोलने, सत्य मानने और सत्य कमं करने वाले हैं वे 'देव', और वैसे ही भूंठ बोलने, भूंठ मानने और भूंठ कमं करने वाले 'मनुष्य' कहाते हैं। जो भूंठ से अलग होके सत्य को प्राप्त होवें, वे देवजाति में गिने जाते हैं। और जो सत्य से अलग होके भूंठ को प्राप्त हों, वे मनुष्य असुर और राक्षस कहे हैं। इससे सब काल में सत्य ही कहे, माने और करे। सत्यव्रत का आचरण करने वाला मनुष्य यशस्वियों में यशस्वी होने से देव और उससे उलटे कमं करने वाला असुर होता है।। २।।

[ (विद्वां०) ] इस कारण से यहाँ विद्वान् ही देव हैं ।। ३ ।।

## श्रथविप्रमाणम् —

तं युइं बुर्हिष् प्रौक्षन् पुरुषं जातमंग्रतः। तेने देवा अंयजन्त साध्या ऋषयश्र ये ॥१॥

य० अ० ३१। मं० ९।।

७६८

### पञ्चमहायज्ञविधिः

ग्रथ यदेवानुबुवीत । तेर्नावम्य ऋणं जायते, तद्वघेम्य एतत् करोत्यृवीणां निधिगोप इति ह्यनूचानमाहुः ।। २ ।।

शत० कां १। अ०७। कं०३।।

ग्रथोर्षेयं प्रवृणीते । ऋषिम्यइचैवैनमेतद्देवेम्यश्च निवेदयत्ययं महावीर्यो यो यज्ञं प्रापदिति, तस्मादार्षेयं प्रवृणीते ॥ ३ ॥

शतः कां०१। प्रपा०३। ग्र०४। कं०३।।

भाष्यम्—(तं यज्ञम्०) इति मन्त्रः सृष्टिविद्याविषये व्याख्यातः ॥ १ ॥

(अथ यदेवा०) म्रथेत्यनन्तरं यत् सर्वविद्यां पठित्वानुवचनमध्यापनं कर्मास्ति, तदृषिकृत्यमस्ति । तेनाध्ययनाध्यापनकर्मणिषभ्यो देयमृणं जायते । यत् तेषामृषीणां सेवनं करोति, तदेतेभ्य एव सुखकारी भवति । यः सर्वविद्याविद् भूत्वाध्यापयित तमनू-चानमृषिमाहुः ।। २ ।।

(ग्रथार्षेयं प्रवृणीते०) यो मनुष्यः पिठत्वा पाठनाख्यं कर्म प्रवृणीते, तदार्षेयं कर्मास्ति । य एवं कुर्वन् तेभ्य ऋषिभ्यो देवेभ्यश्चैतत् प्रियकरं वस्तु सेवनं च निवेदयित, सोऽयं विद्वान् महावीर्यो भूत्वा यज्ञं विज्ञानाख्यं (प्रापत्) प्राप्नोति । ते चैनं विद्यार्थिनं विद्वांसं कुर्युः यश्च विद्वानस्ति यश्चापि विद्यां गृह्णाति, स ऋषिसंज्ञां लभते । तस्मादि-दमार्थेयं कर्मं सर्वेमंनुष्यैः स्वीकार्यम् ।। ३ ।।

भाषार्थ—(तंयज्ञं०) इस मन्त्र का ग्रर्थं भूमिका के सृष्टिविद्या विषय में कह

(अथ यदेवा०) ग्रव इसके ग्रनन्तर सब विद्याओं को पढ़ के जो पढ़ाना है, वह 'ऋषिकमं' कहाता है। उस पढ़ने ग्रीर पढ़ाने से ऋषियों का ऋण ग्रर्थात् उनको उत्तम उत्तम पदार्थ देने से निवृत्त होता है। ग्रीर जो इन ऋषियों की सेवा करता है, वह उनको सुख करने वाला होता है। यही व्यवहार ग्रर्थात् विद्या कोश की रक्षा करने वाला होता है। जो सब विद्याग्रों को जान के सबको पढ़ाता है, उसको 'ऋषि' कहते हैं।। २।।

(अथाधें प्रवृणीते०) जो पढ़ के पढ़ाने के लिये विद्यार्थी का स्वीकार करना है, सो ग्राघेंय ग्राथीत् ऋषियों का कमं कहाता है। जो उस कमं को करता हुग्रा उन ऋषियों और देवों के लिये प्रसन्न करने वाले पदार्थों का निवेदन तथा सेवा करता है, वह विद्वान् ग्रतिपराक्रमी हो के विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है। जो विद्वान् ग्रीर विद्या को ग्रहण करने वाला है उसका 'ऋषि' नाम होता है। इस कारण से इस आर्षेय कर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें।। ३।।

१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायामिति शेषः ॥ सं०

२. यहां भूमिका शब्द से 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' स्रभिप्रेत है।। सं०

पितृयज्ञविधिः

930

श्रथ पितृषु प्रमाणम्—

ऊर्जे वहन्तीर्मृतं घृतं पर्यः क्रीलालं परिस्नुतम् । स्वधा स्थं तुर्पयंत मे पुितृन् ॥१॥ य० ग्र० २ । मं० ३४ ॥

भाष्यम् -- ईश्वरः सर्वान् प्रत्याज्ञां ददाति -- सर्वे मनुष्या एव जानीयुवंदेयु-श्चाज्ञापयेयुरिति -- (मे पितृन्) मम पितृपितामहादीन् आचार्यादीश्च यूयं सर्वे मनुष्याः (तर्पयत) सेवया प्रसन्नान् कुश्त । तथा (स्वधा स्थ) सत्यविद्याभिक्तस्वपदार्थधारिणो भवत । केन केन पदार्थेन ते सेवनीया इत्याह -- (ऊज्जं वहन्तीः) पराक्रमं प्रापिकाः सुगन्धिता हृद्या श्रपस्तेभ्यो नित्यं दद्युः । (ग्रमृतम्) अमृतात्मकमनेकविधरसं (घृतम्) आज्यं (पयः) दुग्धं (कीलालम्) ग्रनेकविधसंस्कारैः सम्पादितमन्नं माक्षिकं मधु च (परिस्नुतम्) कालपक्वं फलादिकं च दत्वा पितृन् प्रसन्नान् कुर्युः ।। १ ।।

भाषार्थ - (ऊर्ज वहन्ती०) [ईश्वर सब को ग्राज्ञा देता है कि] पिता वा स्वामी अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री वा नौकरों को सब दिन के लिये ग्राज्ञा देके कहे कि - (तर्पयत मे पितृन्) जो मेरे पिता पितामहादि, माता मातामहादि तथा ग्राचार्य ग्रौर इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग म्रवस्था ग्रथवा ज्ञान से वृद्ध, मान्य करने योग्य हों, उन सब के ग्रात्माग्रों को यथायोग्य सेवा से प्रसन्न किया करो । सेवा करने के पदार्थ ये हैं — (ऊर्ज वहन्ती०) जो उत्तम उत्तम जल, (ग्रमृतम्) अनेकविधरस, (घृतम्) घी, (पयः) दूध, (कीलालम्) ग्रनेक संस्कारों से सिद्ध किये रोगनाश करने वाले उत्तम उत्तम ग्रन्न श्रीर मधु], (परिस्नुतम्) सब प्रकार के उत्तम उत्तम फल हैं, इन सब पदार्थों से उनकी सेवा सदा करते रहो । जिससे उनका ग्रात्मा प्रसन्न होके तुम लोगों को ग्राशीर्वाद देता रहे कि उससे तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहो। (स्वधा स्थ०) हे पूर्वोक्त पितृलोगो ! तुम सब हमारे अमृतरूप पदार्थों के भोगों से सदा सुखी रहो । ग्रीर जिस जिस पदार्थ की तुम को श्रपने लिये इच्छा हो, जो जो हम लोग कर सकें, उस उस की ग्राज्ञा सदा करते रहो । हम लोग मन, वचन, कर्म से तुम्हारे सुख करने में स्थित हैं। तुम लोग किसी प्रकार का दुःख मत पाग्रो । जैसे तुम लोगों ने बाल्यावस्था ग्रीर ब्रह्मचर्ग्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है, वैसे हम को भी ग्राप लोगों का प्रस्युपकार करना ग्रवश्य चाहिये, जिससे हमको कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो ।। १ ।।

# ग्रथ पितृगां परिगणनम्—

येषां पितृसंज्ञा ये सेवितुं योग्याश्च, ते क्रमशो लिख्यन्ते—
१-सोमसदः। २-ग्रिग्व्वात्ताः। ३-ब्रिह्यदः। ४-सोमपाः।
५-हविभुंजः।६-ग्राज्यपाः।७-सुकालिनः। ६-यमराजाश्चेति।।
भाष्यम्—(सो०) सोमे ईश्वरे सोमयागे वा सीदन्ति, ये सोमगुणाश्च ते

### पञ्चमहायज्ञविधः

'सोमसदः' (अ०) ग्रग्निरीश्वरःसुष्ठुतया ग्रात्तो गृहीतो यैस्ते 'अग्निष्वात्ताः'। यद्वा ग्रग्नेगुंणज्ञानात् पृथिवीजलब्योम-यान-यन्त्ररचनादिका पदार्थविद्या सुष्ठुतया ग्रात्ता गृहीता यैस्ते । (ब०) बहिषि सर्वोत्कृष्टे ब्रह्मणि शमदमादिषूत्तमेषु गुणेषु वा सीदन्ति ते 'बहिषदः'। (सो०) यज्ञेनोत्तममौषधिरसं पिवन्तिःपाययन्ति वा ते 'सोमपाः'।। १-४।।

(ह०) हिवर्डु तमेव यज्ञेन शोधितवृष्टिजलादिकं भोक्तुं भोजियतुं वा शीलमेषां ते 'हिवर्भु जः'। (ग्रा०) आज्यं घृतम्, यद्वा 'ग्रज गितक्षेपणयोः' धात्वर्थादाज्यं विज्ञानम्, तद्दानेन पान्ति रक्षन्ति पालयन्ति रक्षयन्ति ये विद्वांसस्ते 'ग्राज्यपाः'। (सु०) ईश्वरिवद्योपदेशकरणस्य ग्रहणस्य च शोभनः कालो येषां ते। यद्वा ईश्वरज्ञानप्राप्त्या सुखरूपः सदैव कालो येषां ते 'सुकालिनः'। (य०) ये पक्षपातं विहाय न्यायव्यवस्था- कर्त्तारस्यन्ति ते 'यमराजाः'।। ५— पा

भाषार्थ—(सो०) जो ईश्वर ग्रौर सोमयज्ञ में निपुण, ग्रौर जो शान्त्यादिगुण सिहत हैं, वे 'सोमसद्' कहाते हैं। (ग्र०) अग्नि जो परमेश्वर वा भौतिक उनके गुण ज्ञात करके जिनने ग्रच्छे प्रकार ग्रग्निविद्या सिद्ध की है, उनको 'ग्रग्निव्यात्ता' कहते हैं। (ब०) जो सब से उत्तम परब्रह्म में स्थिर होके शम-दम-सत्य-विद्यादि उत्तम गुणों में वर्त्तमान हैं, उनको 'बहिषद्' कहते हैं। (सो०) जो यज्ञ करके सोमलतादि उत्तम ग्रोषिधयों के रस के पान करने ग्रौर कराने वाले हैं, तथा जो सोमविद्या को जानते हैं, उनको 'सोमपा' कहते हैं।। १—४।।

(ह०) जो भ्राग्नहोत्रादि यज्ञ करके वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा सब जगत् का उपकार करते, भ्रौर जो यज्ञ से श्रम्नजलादि की शुद्धि करके खाने पीने वाले हैं, उनको 'हविभूं ज' कहते हैं। (ग्रा०) ग्राज्य कहते हैं घृत, स्निग्धपदार्थ और विज्ञान को, जो उसके दान से रक्षा करने वाले हैं, उनको 'ग्राज्यपा' कहते हैं। (सु०) मनुष्य- शरीर को प्राप्त होकर ईश्वर और सत्यविद्या के उपदेश का जिनका श्रेष्ठ समय, श्रौर जो सदा उपदेश में ही वर्त्तमान है उनको 'सुकालिन' कहते हैं। (य०) जो पक्षपात को छोड़ के सदा सत्य न्याय व्यवस्था ही करने में रहते हैं, उनको 'यमराज' कहते हैं।। ५— ८।।

६-पितृपितामहप्रपितामहाः । १०-मातृपितामहीप्रपितामह्यः । ११-सगोत्राः । १२- [ग्राचार्यादि] सम्बन्धिनः ।।

भाष्यम्—(पि०) ये सुष्ठुतया श्रेष्ठान् विदुषो गुणान् वासयन्तस्तत्र वसन्तश्च, विज्ञानाद्यनन्तधनाः स्वान् जनान् धारयन्तः पोषयन्तश्च चतुर्विशितवर्षपर्यन्तेन ब्रह्मचर्येण विद्याभ्यासकारिणः स्वे जनकाश्च सन्ति, ते पितरो वसवो विज्ञेया ईश्वरोऽपि । (पिता०) ये पक्षपातरिहता दुष्टान् रोदयन्तश्चतुश्चत्वारिशद्वर्षपर्यन्तेन ब्रह्मचर्यसेवनेन कृतविद्याभ्यासास्ते रुद्राः स्वे पितामहाश्च ग्राह्मास्तथा रुद्र ईश्वरोऽपि । (प्रपि०) ब्रादित्यवदुत्तमगुणप्रकाशका विद्वांसोऽष्टचत्वारिशद्वर्षेण ब्रह्मचर्येण सर्वविद्यासम्पन्नाः सूर्यविद्याप्रकाशाः [त ब्रादित्याः] स्वे प्रपितामहाश्च ग्राह्मास्तथाऽऽदित्योऽविनाशिश्वरो वात्र गृह्मते।

990

### पितृयज्ञविधि

900

(मा०) पित्रादिसदृश्यो मात्रादयः सेव्याः ।। ६-१० ॥

ये (स॰) स्वसमीपं प्राप्ताः पुत्रादयस्ते श्रद्धया पालनीयाः । (म्रा॰ सं॰) ये गुर्वादिसख्यन्तास्सन्ति ते हि सर्वदा सेवनीयाः ।। ११—१२ ।।

भाषार्थ—(पि०) जो वीर्यं के निषंकादि कर्मों को करके उत्पत्ति ग्रीर पालन करे, ग्रीर चौवीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या को पढ़े, उसका नाम 'पिता' और 'वसु' है। (पिता०) जो पिता का पिता हो, और चवालीस वर्ष पर्य्यन्त [ब्रह्मचर्य से विद्याभ्यास कर पक्षपात रहित होकर दुष्टों को रुलाने वाला है, उसका नाम 'पितामह' ग्रीर 'रुद्र' है। (प्रिपतामहः) जो पितामह का पिता ग्रीर आदित्य के समान उत्तम गुणों का प्रकाशक ग्रहतालीस वर्ष पर्यंन्त]' ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या पढ़ के सब जगत् का उपकार करता हो, उसको 'प्रिपतामह' ग्रीर 'ग्रादित्य' कहते हैं। तथा जो पित्रादिकों के तुल्य पुरुष हैं उनकी भी पित्रादिकों के तुल्य सेवा करनी चाहिये।

(मा०) पित्रादिकों के समान विद्या स्वभाव वाली स्त्रियों की भी अत्यन्त सेवा करेनी चाहिये।। ९—१०।।

(सगो०) जो समीपवर्ती ज्ञाति के योग्य पुरुष हैं, वे भी सेवा करने के योग्य हैं।। (ग्राचार्व्यादिसं०) जो पूर्ण विद्या के पढ़ाने वाले श्वसुरादि सम्बन्धी तथा उनकी स्त्री हैं, उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।। ११—१२।।

एतेषां विद्यामानानां सोमसदादीनां सुखार्थं प्रीत्या यत् सेवनं ऋयते तत् तर्पणम्, श्रद्धया यत् सेवनं ऋयते तच्छाद्धम् । ये सत्यविज्ञानदानेन जनान् पान्ति रक्षन्ति ते पितरो विज्ञेयाः ।

#### श्रत्र प्रमाणानि--

'ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासः' इत्यादीनि यजुर्वेदस्यैकोनिविशतितमेऽध्याये सप्तसु सोमसदादिषु पितृषु द्रष्टब्यानि । तथा ये समानाः समनसः पितरो यमराज्य इत्यादीनि यमराजेषु । 'पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः' इत्यादीनि पितृपितामहप्रपितामहादिषु । एवं 'नमो वः पितरो रसाय' इत्यादीनि पितृणां सत्कारे च । इति ऋग्यजुरादि-वचनानि सन्तीति बोध्यम् । ग्रन्यच्च—

वसून् वदन्ति वै पितृन् रुद्रांश्चेव पितामहान् ।

प्रिवितामहांद्रचादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी ।। म० ग्र० ३ । इलो० २८४ ।।
भाषार्थ-जो सोमसदादि पितर विद्यमान ग्रर्थात् जीवते हों, उनको प्रीति से
सेवनादि से तृष्त करना 'तपंण' और श्रद्धा से अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सेवन करना है, सो

यह पाठ प्रथम सं • में नहीं है । संस्कृतानुसार पूरा किया है ।। सं •

२. यजुः १९ । ४१ ।। ऋ० १० । १४ । = ।। ४. यजुः १९ । ३६ ।।

३. यजुः १९। ४४ ॥

५. यजुः २। ३२ ॥ सं०

500

## पञ्चमहायज्ञविधिः

'श्राद्ध' कहता है। जो सत्य विज्ञानदान से जनों को पालन करते हैं वे 'पितर' हैं। इस विषय में प्रमाण—

'ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासः' इत्यादि मन्त्र सोमसदादि सातों पितरों में प्रमाण हैं। 'ये समानाः समनसः पितरो यमराज्य' इत्यादि मन्त्र यमराजों, 'पितृभ्यः स्वधायभ्यः स्वधा नमः' इत्यादि मन्त्र पिता पितामह प्रपितामहादिकों तथा 'नमो वः पितरो रसाय' इत्यादि मन्त्र पितरों की सेवा और सत्कार में प्रमाण हैं। ये ऋग्यजुर्वेद आदि के वचन हैं।

श्रीर मनुजी ने भी कहा है कि — 'पितरों को वसु, पितामहों को रुद्र श्रीर प्रिपतामहों को आदित्य कहते हैं, यह सनातन श्रुति है।'

मनु० अ० ३। इलो० २८४।।

इति वित्यज्ञविधिः समाप्तः ।।

१. यजुः १९ । ४१ ॥ ऋ० १० । १४ । ५ ॥

२. यजुः १९ । ४५ ॥

३. यजुः १९ । ३६ ॥

४. यजुः २ । ३२ ॥ सं०

# अथ बलिवैश्वदेवविधिलिख्यते

यदन्नं पक्वम क्षारलवणं भोजनार्थं भवेत्तेनैव बलिवैश्वदेवकर्म कार्य्यम्—

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्ये जनौ विधिपूर्वकम् । आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥

मनु० ग्र० ३। श्लो० ४८।।

मावार्थ—[ग्रव चौथे बिलवैश्वदेव की विधि लिखी जाती है— ग्रथीत् जब भोजन सिद्ध हो, तब जो कुछ भोजनार्थं बने उसमें से खट्टा, लवणान्न ग्रौर क्षार को छोड़कर वृतिमिष्टयुक्त श्रन्न जो कुछ पाकशाला में सिद्ध हो. उसको दिव्यगुणों के ग्रर्थ पाकारिन में विधिपूर्वक नित्य होम करे।]

## ग्रथ बलिवेश्वदेवकर्माण प्रमाणम्---

अहंरहर्बुलिमित्ते हर्न्तोऽश्वायिव तिष्ठेते घासमंग्ने । रायस्पोषेण समिषा मदंन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥१॥ अथर्व० कां० १६ । सू० ५५ । म० ७ ॥

> पुनन्तुं मा देवज्ञनाः पुनन्तु मर्नसा धिर्यः। पुनन्तु विश्वां भूतानि जातेवेदः पुनीहि मां॥२॥

> > य० अ० १९। मं० ३६।।

भाष्यम्—हे (ग्रग्ने) परमेश्वर ! ये (अहरहबंलि०) भवदाज्ञया बलिवंश्वदेवं नित्यं कुर्वन्तो मनुष्यास्ते (रायस्पोषेण समिषा) चक्रवित्तराज्यलक्ष्म्या घृतदुग्धादिपुष्टि-कारकपदार्थंप्राप्त्या च सम्यक् शुद्धेच्छ्या (मदन्तः) नित्यानन्दप्राप्ताः सन्तः, मातुः पितुराचार्य्यादीनां चोत्तमपदार्थः प्रीतिपूर्विकां सेवां नित्यं कुर्युः। (ग्रश्वायेव तिष्ठते घासम्) यथाऽश्वस्य सन्मुखे तद्भक्ष्यं तृणवीश्धादि वा तत्पानार्थं जलादि पुष्कलं स्थाप्यते, तथा सर्वेषां सेवनाय बहून्युत्तमानि वस्तूनि दद्युर्यंतस्ते प्रसन्ना भवेयुः। (मा ते ग्रग्ने प्रतिवेशा रिषाम) हे परमगुरो अग्ने परमेश्वर ! भवदाज्ञातो ये विश्वद्यव्यवहारस्तेषु वयं कदाचिन्न प्रविशेम । ग्रन्यायेन कदाचित्प्राणिनः पीडां न दद्याम । किन्तु सर्वान् स्विमित्राणीव स्वयं सर्वेषां मित्रमिवेति ज्ञात्वा परस्परमुपकारं कुर्यामेतीश्वराज्ञास्ति । १।।

१. यह कोष्ठान्तर्गत पाठ प्रथम सं० में नहीं है। संस्कृतानुसार पूरा किया है ॥ सं०

800

### पञ्चमहायज्ञविधिः

(पुनन्तु०) ग्रस्यार्थो देवप्रकरणे ' उक्तः ।। २ ।।

भाषार्थ—हे (ग्रग्ने) परमेश्वर! आपकी आजा से (अहरहबंकि॰) नित्य प्रति बिलवेश्वदेव कर्म करते हुए हम लोग (रायस्पोषेण सिमषा) चक्रवित्तराज्यलक्ष्मी, घृतदुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थों की प्राप्ति और सम्यक् शुद्ध इच्छा से (मदन्तः) नित्य आनन्द में रहें। तथा माता पिता आचार्य्य आदि की उत्तम पदार्थों से नित्य प्रीति-पूर्वक सेवा करते रहें (ग्रश्वायेव तिष्ठते घासम्) जैसे घोड़े के सामने बहुत से खाने वा पीने के पदार्थ धर दिये जाते हैं, वैसे सबकी सेवा के लिये बहुत से उत्तम उत्तम पदार्थ देवें। जिनसे वे प्रसन्न होके हम पर नित्य प्रसन्न रहें। (मा ते अग्ने प्रतिवेषा रिषाम) हे परमगुरु ग्रग्नि परमेश्वर! ग्राप और ग्रापकी ग्राज्ञा से विरुद्ध व्यवहारों में हम लोग कभी प्रवेश न करें, और ग्रन्थाय से किसी प्राणी को पीड़ा न पहुँचावें, किन्तु सबको अपना मित्र और ग्रपने को सबका मित्र समक्ष के परस्पर उपकार करते रहें।। १।।

(पुनन्तु०) इसका म्रर्थ देवतर्पणविषय में कर दिया है।। २।।

## ग्रथ होममन्त्राः--

ओमग्नये स्वाहा ।। १ ।। श्रों सोमाय स्वाहा ।। २ ।। श्रोमग्नी-षोमाभ्यां स्वाहा ।। ३ ।। श्रों विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ।।४।। श्रों धन्वन्तरये स्वाहा ।। १ ।। श्रों कुर्ह्वं स्वाहा ।।६।। श्रोमनुमत्ये स्वाहा ।। ७ ।। श्रों प्रजापतये स्वाहा ।। ६ ।। श्रों सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ।। ६ ।। श्रों स्विष्टकृते स्वाहा ।। १० ।।

भाष्यम्—(ग्रोम०) ग्रस्यार्थ उक्तः । (ओं सो०) सर्वानन्दप्रदो यः सर्वजग-दुत्पादक ईश्वरः सोऽत्र ग्राह्यः । [ (ओमग्नी०) प्राणापानाभ्याम्, अनयोरर्थो गायत्री-मन्त्रार्थ उक्त । ] भ (ग्रों वि०) विश्वेदेवा विश्वप्रकाशका ईश्वरगुणाः, सर्वे विद्वांसो वा । (ओं धन्व०) सर्वरोगनाशक ईश्वरोऽत्र गृह्यते । (ग्रों कु०) दर्शेष्टघर्थोयमारम्भः । ग्रमावास्येष्टिप्रतिपादितायै चितिशक्तये वा ।। १—२ ।।

(स्रोम०) पौर्णमासेष्टचर्थोऽयमारम्भः, विद्यापठनानन्तरं मितर्मननं ज्ञानं यस्या-दिचित्रक्तिः सा चितिरनुमितर्वा । (ओं प्र०) सर्वजगतः स्वामी रक्षक ईश्वरः ।

१. पित्यज्ञान्तर्गते इति शेषः । ॥ स०

२. ग्रनयोः प्राणापानयोरित्यथंः ॥

३. महाब्याहृत्यर्थे,

४. यह पाठ प्रथम संस्करण में नहीं है। किन्तु इन मन्त्रों का ग्रर्थ ऋ० भाष्यभूमिका में ऐसा ही किया है।। सं०

### बलिवैश्वदेवविधि:

400

(ओं सह०) ईश्वरेण प्रकृष्टगुणै: सहोत्पादितयो: पुष्टिकरणाय। (ओं स्विष्ट०) य:
सुष्ठु शोभनमिष्टं सुखं करोति स चेश्वर: ।। ७—१० ।।

एतैर्मन्त्रैहोंमं कृत्वाऽय बलिदानं कुर्यात्-

भाषार्थ—(ग्रोम०) अग्नि शब्दार्थ कह आये हैं। (ग्रों सो०) जो सब पदार्थों को उत्पन्न ग्रोर पुष्ट करने से सुख देनेहारा है, उसको 'सोम' कहते हैं। (ग्रोमग्नी०) जो प्राण सब प्राणियों के जीवन का हेतु, ग्रीर ग्रपान ग्रर्थात् दु:ख के नाश का हेतु है, इन दोनों को 'ग्रग्नीयोम' कहते हैं। (ग्रों वि०) यहाँ संसार को प्रकाश करने वाले ईश्वर के गुण, ग्रथवा विद्वान् लोगों का 'विश्वेदेव' शब्द से ग्रहण होता है। (ओं व०) जो जन्ममरणादि रोगों का नाश करनेहारा परमात्मा है वह 'धन्वन्तरि' कहाता है। (ओं कु०) जो ग्रमावास्येष्टि का करना है।। १—६।।

(ग्रोम०) जो पौर्णमास्येष्टि वा सर्वशास्त्रप्रतिपादित परमेश्वर की चिति शक्ति है यहाँ उसका ग्रहण है। (ग्रों प्र०) जो सब जगत् का स्वामी जगदीश्वर है, वह 'प्रजापित' कहाता है। (ग्रों स०) ईश्वर से उत्पादित ग्रिग्नि ग्रीर पृथिवी की पृष्टि करने के लिये। (ग्रों स्व०) जो इष्ट सुख करनेहारा परमेश्वर है, वही 'स्विष्टकृत' कहाता है। ये दश ग्रथं दश मन्त्रों के हैं।। ७—१०।।

ग्रव बलिदान के मन्त्रों को लिखते हैं-

श्रों सानुगायेन्द्राय नमः ।। श्रों सानुगाय यमाय नमः ।। श्रों सानुगाय वरुणाय नमः ।। श्रों सानुगाय सोमाय नमः ।। श्रों मरुद्भ्यो नमः ।। श्रोंम् श्रद्भ्यो नमः ।। श्रों वनस्पतिभ्यो नमः ।। श्रों श्रियं नमः ।। श्रों भद्रकाल्यं नमः ।। श्रों बह्यपतये नमः ।। श्रों वास्तुपतये नमः ।। श्रों विश्वेभ्यो वेवेभ्यो नमः ।। श्रों दिवाचरेभ्यो मूतेभ्यो नमः ।। श्रों नक्तंचारिभ्यो मूतेभ्यो नमः ।। श्रों सर्वात्ममूतये नमः ।। श्रों पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ।। १-१६।।

भाष्यम्—(ग्रों सा०) 'णम प्रह्लत्वे शब्दे च' इत्यनेन सित्त्रयापुरस्सरिवचारेण मनुष्याणां यथार्थं विज्ञानं भवतीति वेद्यम् । नित्येर्गुं णैस्सह वर्त्तमानः परमैश्वर्यवानी-श्वरोऽत्रेन्द्र शब्देन गृह्यते । (ग्रों सानु०) पक्षपातरिहतो न्यायकारित्वादिगुणयुक्तः परमात्मात्र यमशब्दार्थेन वेद्यः । (ग्रों सा०) विद्याद्युक्तमगुणविशिष्टः सर्वोक्तमः परमेश्व-रोऽत्र वरुणशब्देन ग्रहीतव्यः । (ग्रों सानुगाय सो०) ग्रस्यार्थः उक्तः ।।

(ग्रों म०) य ईश्वराधारेण सकलं विश्वं धारयन्ति चेष्टयन्ति ते ग्रत्र मस्तो गृह्यन्ते । (ग्रों ग्रद्भच०) ग्रस्यार्थः 'शन्नोदेवी' रित्यत्रोक्तः । (ग्रों व०) वनानां लोकानां पत्य ईश्वरगुणाः परमेश्वरो वा । बहुवचनमत्रादरार्थम् । यद्वोत्तमगुणयोगेनेश्वरेणोत्पादि-तेभ्यो महावृक्षोभ्यश्चेति बोध्यम् । (ओं श्वि०) श्रीयते सेव्यते सर्वेजंनैस्सः श्रीरीश्वरस्सर्व सुखशोभावत्वाद् गृह्यते । यद्वा तेनोत्पादिता विश्वशोभा च । (ग्रों भ०) भद्रं कल्याणं सुखं कालियतुं शीलमस्याः सा भद्रकालीश्वरशक्तिः ।

### पञ्चमहायज्ञविधिः

७७६

(ओं ब्र०) ब्रह्मणः सर्वशास्त्रविद्यायुक्तस्य वेदस्य ब्रह्माण्डस्य वा पितरी६वरः । (ग्रों वा०) वसन्ति सर्वाणि भूतानि यिस्मितद्वास्त्वाकाशं तत्पितरी६वरः । (ग्रों वि०) श्रस्यार्थं उक्तः । (ओं दि०) (ग्रों नक्तं०) ईश्वरकृपयैवं भवेद् दिवसे यानि भूतानि विचरन्ति रात्रौ च, तान्यस्मासु विघ्नं मा कुर्वन्तु । तैः सहास्माकमिवरोधोस्तु । एत-दर्थोऽयमारम्भः । (ग्रों स०) सर्वेषां जीवात्मनां भूतिभवनं सत्तेश्वरो नान्यः । (ग्रों पि०) ग्रस्यार्थः पितृतर्पणे प्रोक्तः । नम इत्यस्य निरिभूमानद्योतनार्थः । परस्योतकृष्टतया मान्यज्ञापनार्थं श्चारमः ।। १—१६ ।।

भाषार्थ — ( ग्रों सा०) जो सर्वेश्वर्ययुक्त परमेश्वर ग्रीर जो उसके गुण हैं, वे 'सानुग इन्द्र' शब्द से ग्रहण होते हैं, (ओं सा०) जो सत्य न्याय करने वाला ईश्वर ग्रीर उसकी सृष्टि में सत्य न्याय के करने वाले सभासद् हैं, वे 'सानुग यम' शब्दार्थ से ग्रहण होते हैं। (ग्रों सा०) जो सबसे उत्तम परमात्मा ग्रीर उसके धार्मिक भक्त हैं, वे 'सानुग वरुण' शब्दार्थ से जानने चाहियें। (ग्रों सा०) पुण्यात्माग्रों को आनन्दित करने वाला ग्रीर जो पुण्यात्मा लोग हैं, वे 'सानुग सोम' शब्द से ग्रहण किये हैं।

(श्रों मरु०) जो प्राण ग्रर्थात् जिनके रहने से जीवन ग्रौर निकलने से मरण होता है, उनको 'मरुत्' कहते हैं। इनकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये। (ग्रों ग्रद्भ्यो०) इसका अर्थ 'शन्नोदेवी' इस मन्त्र के ग्रर्थ में लिखा है। (ग्रों व०) जिनसे वर्षा ग्रधिक होती और जिनके फलादि से जगत् का उपकार होता है, उनकी भी रक्षा करनी योग्य है। (ग्रों श्रि०) जो सब के सेवा करने योग्य परमात्मा है, उसकी सेवा से राज्यश्री की प्राप्ति के लिये सदा उद्योग करना चाहिये। (ग्रों भ०) जो कल्याण करने वाली परमात्मा की शक्ति ग्रर्थात् सामर्थ्य है, उसका सदा ग्राश्रय करना चाहिये।

(ग्रों त्र०) जो वेद का स्वामी ईश्वर है, उसकी प्रार्थना ग्रीर उद्योग विद्या-प्रचार के लिये ग्रवश्य करना चाहिये। (ग्रों वा०) जो वास्तुपति गृहसम्बन्धी पदार्थों का पालन करनेहारा मनुष्य ग्रथवा ईश्वर है, इनका सहाय सर्वत्र होना चाहिये। (ग्रों वि०) इसका अर्थ कह दिया है। (ग्रों दि०) जो दिन में विचरने वाले प्राणियों से उपकार लेना ग्रीर उनको सुख देना है, सो मनुष्यजाति का ही काम है। (ग्रों नक्तं०) जो रात्रि में विचरने वाले प्राणी हैं, उनसे भी उपकार लेना और जो उनको सुख देना है, इसिंवियरने वाले प्राणी हैं, उनसे भी उपकार लेना और जो उनको सुख देना है, इसिंविय यह प्रयोग है। (ओं सर्वात्म०) सब में व्याप्त परमेश्वर की सत्ता को सदा ध्यान में रखना चाहिये। (ग्रों पि०) माता, पिता, ग्राचार्य, ग्रतिथि, पुत्र, भृत्यादिकों को भोजन कराके पश्चात् गृहस्थ को भोजनादि करना चाहिये। 'स्वाहा' शब्द का ग्रथं पूर्व कर दिया है। और 'नमः' शब्द का ग्रथं यह है कि ग्राप अभिमान रहित होके दूसरे का मान्य करना।। ९—१६।।

इसके पीछे छ: भागों को लिखते हैं-

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्। वायसानां कुमीएगां च शनकैर्निवंपेद् भुवि।।

१. मनु० ३। ९२ ॥ सं०

### बलिवैश्वदेवविधिः

७७७

स्रनेन षड् भागान् भूमो दद्यात् । एवं सर्वप्राणिभ्यो भागान् विभज्य दत्वा च तेषां प्रसन्नतां संपादयेत् ।

मावार्थ — कुत्तों, कञ्जालों, कुष्ठी ग्रादि रोगियों, काक ग्रादि पक्षियों ग्रीर चींटी ग्रादि कृमियों के लिये छ: भाग ग्रलग-ग्रलग बाँट के दे देना ग्रीर उनकी प्रसन्नता सदा करना।

यह वेद भीर मनुस्मृति की रीति से बलिवैश्वदेव की विधि लिखी।।

इति बलिवैश्वदेवविधिः समाप्तः

# अथ पञ्चमोऽतिथियज्ञः प्रोच्यते

यत्रातिथीनां सेवनं यथावत् कियते, तत्रैव कल्याणं भवति । ये पूर्णविद्यावन्तः परोपकारिणो जितेन्द्रिया धार्मिकाः सत्यवादिनश्छलादिदोषरहिता नित्यभ्रमणकारिणो मनुष्यास्सन्ति तानितथीन् कथयन्ति । भ्रत्रानेके प्रमाणभूता वैदिकमन्त्रास्सन्ति, परन्त्वत्र संक्षेपतो द्वावेव लिखामः—

तद्यस्यैवं विद्वान् बात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥

स्वयमेनमस्युदेत्यं ब्र्याद् बात्य क्वाबितः सीर्वात्योदकं ब्रात्यं तुर्पयंन्तु ब्रात्य यथां ते प्रियं तथांस्तु ब्रात्य यथां ते वशास्तथांस्तु ब्रात्य यथां ते निकाम-स्तथास्तिवति ॥३॥ अथवं० कां० १५ । स्० ११ । मं० १, २ ॥

भाष्यम्—(तद्य०) यस्य गृहे पूर्तिक्तविशेषयुक्तो विद्वान् (ब्रात्यो०) महोत्तमगुण-विशिष्टः सेवनीयोऽतिथिरर्थाद्यस्य गमनागमनयोरिनयतिथिनं यस्य काचिन्नियता तिथिभविति, किन्तु स्वेच्छयाऽकस्मादागच्छेद् गच्छेच्च, स यदा गृहस्थानां गृहेषु प्राप्नुयात् ।। १ ।।

(स्वयमेनम०) तदा गृहस्थोऽत्यन्तप्रेम्णोत्थाय नमस्कृत्य च तं महोत्तमासने निषादयेत् । तदन्तरं पृच्छेद् भवतां जलादेरन्यस्य वा वस्तुन इच्छास्ति चेत्तद् ब्रूहि । सेवां कृत्वा तत्प्रसन्नतां सम्पाद्य स्वस्थिचित्तस्सन्नेवं पृच्छेत्—(ब्रात्य क्वावात्सीः) हे ब्रात्य पृष्ठ्योत्तम! त्विमतः पूर्वं क्व ब्रवात्सीः कुत्र निवासं कृतवान् । (ब्रात्योदकम्) हे अतिये ! जलमेतद् गृहाण । (ब्रात्य तपंयन्तु) भवान् स्वकीयसत्योपदेशेनासमांश्च तपंयतु, प्रीणयतु, तथा भवत्सत्योपदेशेन तत्सर्वाणि मम मित्राणि भवन्तं तपंयित्वा विज्ञानवन्तो भवन्तु । (ब्रात्य यथा०) हे विद्वन् ! यथा भवतः प्रसन्नता स्यात्तथा वयं कुर्याम । यद्वस्तु भवत्प्रियमस्ति तस्याज्ञां कुष्ठ । (ब्रात्य यथा ते०) हे अतिये ! यथेच्छतु भवान् तदनुकूलानस्मान् भवत्सेवाकरणे निश्चिनोतु । (ब्रात्य यथा ते०) यथा भवदिच्छापूर्तिस्स्यात् तथा भवत्सेवां वयं कुर्याम । यतो भवान् वयं न परस्परं सेवासत्सङ्ग-पूर्विकया विद्यावृद्ध्या सदानन्दे तिष्ठेम ।

भाषार्थ—ग्रव जो पांचवां ग्रतिथियज्ञ कहाता है, उसको लिखते हैं—जिसमें ग्रितिथियों की यथावत् सेवा करनी होती है। जो पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी, छल-कपट-रहित, नित्य भ्रमण करने वाले मनुष्य होते हैं, उनको 'ग्रितिथि' कहते हैं। इनमें ग्रनेक वैदिक मन्त्र प्रमाण हैं। परन्तु यहां संक्षेप के लिये दो ही मन्त्र लिखते हैं—

(तद्यस्यैवं विद्वान्) जिनके घर में पूर्वोक्त गुणयुक्त विद्वान् (वात्यो०) उत्तम गुणविशिष्टसेवा करने के योग्य प्रतिथि, प्रर्थात् जिसकी आने जाने की कोई भी

### अतिथियज्ञविधि:

900

निश्चित तिथि नहीं हो, जो ग्रकस्मात् ग्रावे ग्रीर जावे, जब ऐसा मनुष्य गृहस्थों के घर में प्राप्त हो ।। १ ।।

(स्वयमेनम०) तब उसको गृहस्थ ग्रत्यन्त प्रेम से उठकर नमस्कार करके, उत्तम ग्रासन पर बैठाके, पश्चात् पूछे कि आपको कुछ जल वा किसी अन्य वस्तु की इच्छा हो सो किहिये। इस प्रकार उसको प्रसन्न कर ग्रीर स्वयं स्वस्थिचित्त होके उससे पूछे कि—(ज्ञात्य क्वावात्सीः) है ब्रात्य उत्तम पुरुष ! ग्रापने यहां ग्राने के पूर्व कहाँ वास किया था। (ब्रात्योदकम्) है ग्रातिथ ! यह जल लीजिये। (ब्रात्य तप्यन्तु) और हम लोग ग्रपने सत्य प्रेम से आपको तृष्त करते हैं, ग्रीर सब हमारे इच्ट मित्र लोग ग्रापके उपदेश से विज्ञानयुक्त होके सदा प्रसन्न हों। (ब्रात्य यथा०) हे विद्वान् ब्रात्य ! जिस प्रकार से ग्रापकी प्रसन्नता हो वैसा ही हम लोग काम करे, ग्रीर जो पदार्थ ग्रापको प्रिय हो उसकी ग्राज्ञा कीजिये। (ब्रात्य यथा०) जिस प्रकार से ग्रापकी कामना पूर्ण हो वैसी ग्रापकी सेवा हम लोग करें। जिससे ग्राप और हम लोग परस्पर सेवा ग्रीर सत्संगपूर्वक विद्यावृद्धि से सदा ग्रानन्द में रहें।। २।।

इति संक्षेपतोऽतिथियज्ञः ।।

इति पञ्चमहायज्ञविधिः समाप्तः ।।